अनुक्रमणिका

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८	१६	पा लेते हैं	का आहार कर लेते हैं।
६६	१२	संसारी और सिद्ध ये दो भेद नहीं कहने चाहिए	सिद्ध नहीं कहना चाहिए
६२	८	लोमी बहुत	लोमी एक
६६	६	आकशान्त	आकाशान्त

दो शब्द

जैनागमों में श्री पन्नवणा सूत्र (प्रज्ञापना सूत्र) और श्री भगवती सूत्र (व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र), इन दो सूत्रों का विशिष्ट स्थान है, इनका विषय गहन है। यह गहन विषय सरलता से कंठस्थ हो जाय और समझ में आ जाय, इस उद्देश्य से महान् परोपकारी पूर्वाचार्यों ने इन्हें थोकड़े का रूप देकर सागर को गागर में भर दिया। बहुत से साधु मुनिराज और श्रावक इन थोकड़ों को बड़ी रुचि के साथ कंठस्थ करते हैं, किन्तु इन दोनों सूत्रों के सब थोकड़े एक ही जगह उपलब्ध नहीं होते। हमारे अहो भाग्य से शास्त्र मर्मज्ञ पंडित मुनिश्री पन्नालालजी महाराज साहब का विराजना हमारे यहाँ बीकानेर में हुआ। आपको शास्त्रों का गहरा ज्ञान है। साथ ही साथ आपको पुरानी धारणाओं का और बोल थोकड़ों का भी गहरा ज्ञान है। साधु वर्ग और श्रावक वर्ग के प्रति आपकी सदा यह हार्दिक इच्छा और अन्तः प्रेरणा रही है कि वह इन बोल थोकड़ों को सीखे। मेरी भी यह भावना हुई कि महाराज श्री के ज्ञानसागर में से यत्किञ्चित् संग्रह हो जाय तो अच्छा हो। महाराज श्री की इच्छा को और मेरी भावना को मूर्त रूप देने के लिये चिरञ्जीव जेठमल ने उद्योग करना प्रारम्भ किया। एक बड़े लम्बे समय तक पूरा परिश्रम उठा कर उन्होंने श्री पन्नवणा सूत्र के ३६ ही पदों के और श्री भगवती सूत्र के ४१ ही शतकों के सब थोकड़े लिपि बद्ध कर लिए। उनमें से श्री पन्नवणा सूत्र के ३६ ही पदों के थोकड़े तीन भागों में छप कर पाठकों के करकमलों में पहुँच चुके हैं। उन पर कई समाचारपत्रों ने समालोचना की और कई महानुभावों ने हमारे पास सम्मतियां भेजीं। उनमें से कई सज्जनों ने यह लिखा था कि 'ये थोकड़े मार-

थाड़ी भाषा में न होकर सरल हिन्दी भाषा में होते तो सब प्रान्तों में इनका समान रूप से लाभ उठाया जा सकता था'।

श्री पन्नवणा सूत्र के थोकड़ों की प्रेसकापी पं० घेवरचन्द्रजी बाँठिया ने तय्यार की थी। यह कार्य पूर्ण हो जाने पर ये श्री भगवती सूत्र के थोकड़ों की प्रेस कापी तय्यार करने में लग गये और सोलहवें शतक तक प्रेसकापी तय्यार कर ली गई। हमने श्री पन्नवणा सूत्र के थोकड़ों पर आई हुई सम्मतियों का सम्मान पूर्वक आदर किया और विचार किया कि श्री भगवती सूत्र के थोकड़े हिन्दी भाषा में ही छपवाये जांय। तदनुसार पं० बाँठियाजी से पुनः हिन्दी अनुवाद करवाना प्रारम्भ किया गया। कठिन शब्दों का तथा पारिभाषिक शब्दों का सरल अर्थ और कठिन विषय को स्पष्ट करने के लिये फुटनोट और टिप्पणियां भी यथास्थान दी गई हैं। हिन्दी अनुवाद का कार्य चालू है। इधर छपाई का कार्य भी शुरू करवा दिया गया। तदनुसार इसका प्रथम भाग छप कर पाठकों के सामने उपस्थित है। आशा है, पाठक गण इससे यथेष्ट लाभ उठावेंगे।

आज कल थोकड़े सीखने की रुचि कम होती जा रही है और एक तरह से थोकड़ों की परिपाटी विच्छिन्न सी होती जारही है, यह खेद का विषय है। यह बात स्पष्ट है कि थोकड़े सीखने से थोड़े परिश्रम से महान् लाभ होता है और फिर शास्त्रों के अर्थ को तथा उसके आशय को समझने में बड़ी सुगमता हो जाती है। इसलिए हम पाठकगण से साग्रह अनुरोध करेंगे कि वे थोकड़े सीखने की तरफ रुचि बढ़ावें और इस अमूल्य ज्ञान खजाने को सदा के लिए कायम रखें।

इन थोकड़ों के संकलन और संशोधन में श्री वर्द्ध० श्रमण संघीय शास्त्र मर्मज्ञ पण्डितरत्न मुनिश्री पन्नालालजी महाराज साहब

का हमें अमूल्य सहयोग एवं सहायता मिली है अथवा यों कहना चाहिए कि पंडित मुनिश्री की कृपा का ही यह फल है कि हम इन थोकड़ों को इस रूप में रखने में समर्थ हो सके हैं। इसके लिए हम मुनिश्री के अत्यन्त आभारी हैं। इसी प्रकार श्रावकवर्य श्रीमान् हीरालालजी सा० मुकीम ने भी इन थोकड़ों के संकलन और संशोधन में हमें काफी सहयोग दिया है, इसके लिए हम उनका भी आभार मानते हैं।

चिरंजीव जेठमल ने बड़ी लगन, रुचि और परिश्रम के साथ इन थोकड़ों का संग्रह किया है। आशा है, धार्मिक ज्ञान के प्रति उनकी जो लगन और रुचि है, वह उत्तरोत्तर वृद्धिंगत होती रहे, जिससे समाज को ज्ञान का अधिकाधिक लाभ मिलता रहे।

प्रूफ संशोधन की पूर्ण सावधानी रखते हुए भी दृष्टिदोष से कुछ अशुद्धियां रह गई हैं। खास अशुद्धियां शुद्धिपत्र में निकाल दी गई हैं। कई जगह रेफ, सकार और मात्रा आदि कम उठे हैं उन्हें पाठक स्वयं शुद्ध कर लेने की कृपा करें। इनके अतिरिक्त कोई शब्द सम्बन्धी या विषयसम्बन्धी अशुद्धि नजर आवे तो पाठक हमें सूचित करने की कृपा करें ताकि आगामी आवृत्ति में उचित संशोधन कर दिया जाय।

निवेदक—
भैरोदान सेठिया

—०००—

श्री भगवतीजी सूत्र के पहले शतक के पहले उद्देशे में ६ बोल का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं–

१-अहो भगवान्! *क्या चलमाणे चलिए, २ उदीरिज्जमाणे उदीरिए, ३ वेइज्जमाणे वेइए, ४ पहीज्जमाणे पहीणे, ५ छिज्जमाणे छिण्णे, ६ भिज्जमाणे भिण्णे, ७ डज्झमाणे दड्ढे, ८ मिज्जमाणे मडे, ६ णिज्जरिज्जमाणे णिज्जिण्णे कहना चाहिए? हाँ गौतम! चलमाणे चलिए यावत् णिज्जरिज्जमाणे णिज्जिण्णे कहना चाहिए।

---

* अहो भगवान्! क्या चलमाणे चलिए–जो चल रहा है उसको चला हुआ कहना चाहिए? इसी तरह २–उदीरिज्जमाणे उदीरिए–जिस कर्म की उदीरणा की जा रही है उसको उदीरणा किया हुआ, ३ वेइज्जमाणे वेइए–जिस कर्म को वेदा जा रहा है उसको वेदा हुआ—भोगा हुआ, ४ पहीज्जमाणे पहीणे–पड़ते हुए को पड़ा हुआ, ५ छिज्जमाणे छिण्णे–छिदते हुए को छिदा हुआ, ६ भिज्जमाणे भिण्णे—भेदन किये जाते हुए को भेदन किया हुआ अर्थात् तीव्र रस से मंद रस करते हुए को मंद रस किया हुआ, ७ डज्झमाणे दड्ढे—जलते हुए को जला हुआ–नष्ट होते हुए को नष्ट हुआ, ८ मिज्जमाणे मडे—आवीचि मरण (जैसे एक तरंग–लहर के बाद दूसरी तरंग आती है और वह नष्ट होती जाती है, इसी तरह एक के बाद एक एक क्षण आयुष्य का नष्ट होता जाता है, इस नाश को आवीचि मरण कहते हैं) द्वारा प्रतिक्षण

२—अहो भगवान् ! क्या ये ६ पद *एगट्ठा, णाणा घोसा णाणा वंजणा है अथवा णाणट्ठा, णाणा घोसा, णाणा वंजणा है ? हे गौतम ! पहले के ४ पद (चलमाणे चलिए यावत् पहीज्जमाणे पहीणे तक) तो एगट्ठा णाणा घोसा णाणा वंजणा उत्पन्न पक्ष आसरी केवलज्ञान उत्पन्न कराते हैं और आगे के ५ पद (छिज्जमाणे छिण्णे यावत् णिज्जरिज्जमाणे णिज्जिण्णे तक) णाणट्ठा णाणा घोसा णाणा वंजणा विगत पक्ष आसरी सिद्धगति प्राप्त कराते हैं।

‡ सेवं भंते ! सेवं भंते !!

मरते हुए को मरा हुआ, ९ णिज्जरिज्जमाणे णिज्जिण्णे-जिस कर्म की निर्जरा की जा रही है उसको निर्जरा किया हुआ कहना चाहिए ? हाँ गौतम ! चलमाणे चलिए यावत् णिज्जरिज्जमाणे णिज्जिण्णे कहना चाहिए।

* एगट्ठा—एक अर्थ वाला। णाणाघोसा—उदात्त अनुदात्त आदि विविधप्रकार के घोष वाले। णाणा वंजणा—विविधप्रकार के व्यञ्जन यानी अक्षर वाले।

णाणट्ठा—अनेक अर्थ वाले। णाणाघोसा—अनेक घोष वाले। णाणा वंजणा—अनेक व्यञ्जन वाले। इसमें चौभंगी बनती है।

१ समान अर्थ समान व्यञ्जन—जैसे क्षीर, क्षीर=दूध।

२ समान अर्थ विविध व्यञ्जन—जैसे—क्षीरं, पय =दूध।

३ भिन्न अर्थ समान व्यञ्जन—जैसे—आक का दूध, गाय का दूध।

४ भिन्न अर्थ भिन्न व्यञ्जन—जैसे—घट पट=घड़ा कपड़ा आदि।

‡ श्री गौतम स्वामी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से अर्ज करते हैं कि—भंते-हे भगवन् ! सेवं—जैसा आप फरमाते हैं वैसा ही है अर्थात् जिस प्रकार आपने तत्त्व फरमाये हैं वे सत्य हैं, तथ्य हैं, यथार्थ हैं। आपका फरमाना यथार्थ है।

थोकड़ा नम्बर १

श्री भगवतीजी सूत्र के पहले शतक के पहले उद्देशे में ४५ बोल का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

४५ द्वार की गाथाएँ —

ठिई उस्सासाहारे किं वाहारेंति सव्वओ वावि !
कइभागं सव्वाणि व कीस व भुज्जो परिणमंति ॥ १ ॥
परिणय चिया य उवचिया, उदीरिया वेइया य णिज्जिण्णा ।
एक्केक्कम्मि पयम्मि, चउव्विहा पोग्गला होंति ॥ २ ॥
भेइय चिया उवचिया, उदीरिया वेइया य णिज्जिण्णा ।
उव्वट्टण संकामण णिहत्तण णिकायणे तिविह कालो ॥ ३ ॥
बंधोदयवेदोवट्टसंकमे तह णिहत्तण णिकाये ।
अचलियकम्मं तु ए भवे, चलियं जीवाओ णिज्जरए ॥ ४ ॥

१—अहो भगवान् ! नारकी के नेरीयों की स्थिति कितने काल की कही गई है ? हे गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की ।

२—अहो भगवान् ! नारकी के नेरीये कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं ? हे गौतम ! लोहार की धमण की तरह निरन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं ।

३—अहो भगवान् ! क्या नारकी के नेरीये आहारट्ठी (आहार करने की इच्छा वाले) होते हैं ? हाँ, गौतम ! आहारट्ठी होते हैं ।

४—अहो भगवान् ! नारकी के नेरीयों का आहार कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! दो प्रकार का है–आभोग णिवत्तिए (जानते हुए आहार करना), २ अणाभोगणिवत्तिए (नहीं जानते हुए आहार करना)।

५—अहो भगवान् ! नारकी के नेरीये कैसे पुद्गलों का आहार ग्रहण करते हैं ? हे गौतम ! द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव यावत् २८८ बोलों का आहार लेते हैं। जिस तरह श्री पन्नवणाजी सूत्र के २८ वें आहारपद में कहा गया है उस तरह से कह देना चाहिए । नियमा (निश्चित रूप से) ६ दिशा का लेते हैं । बहुत करके (प्रायः) वे वर्ण में काले और नीले वर्ण का, गन्ध में दुर्गन्ध का, रस में तीखे और कड़वे रस का, स्पर्श में ४ अशुभ स्पर्शों (खरदरा, भारी, शीत, रूक्ष) का आहार लेते हैं । पहले के वर्णादि गुणों को मिटाकर नये वर्णादि गुण प्रकट करते हैं ।

६—अहो भगवान् ! क्या नारकी के नेरीये सव्वओ आहारेंति (सब आत्म प्रदेशों से आहार लेते हैं) ? हे गौतम ! सव्वओ आहारेंति यावत् ❀ १२ बोलों से आहार लेते हैं ।

❀ १ सव्वओ आहारेंति—सब आत्म प्रदेशों से आहार करते हैं ।
२ सव्वओ परिणमेंति—सब आत्मप्रदेशों से परिणमाते हैं ।
३ सव्वओ ऊससंति—सब आत्मप्रदेशों से उच्छ्वास लेते हैं ।
४ सव्वओ नीससंति—सब आत्मप्रदेशों से श्वास छोड़ते हैं ।

७—अहो भगवान् ! नारकी के नेरीये आहार लेने योग्य पुद्गलों का कितना भाग आहार लेते हैं और कितना भाग आस्वादते हैं ? हे गौतम ! असंख्यातवें भाग आहार लेते हैं और अनन्तवें भाग आस्वादते हैं ।

८—अहो भगवान् ! नारकी के नेरीये जिन पुद्गलों को आहारपणे परिणमाते हैं, क्या उन सब पुद्गलों का आहार करते हैं अथवा सब पुद्गलों का आहार नहीं करते हैं ? हे गौतम ! परिशेष रहित सब पुद्गलों का (सव्वे अपरिसेसिए) आहार करते हैं।

९—अहो भगवान् ! नारकी के नेरीये जिन पुद्गलों को आहार रूप से ग्रहण करते हैं उन पुद्गलों को किस रूप से परिणमाते हैं ? हे गौतम ! श्रोत्रेन्द्रियपणे यावत् स्पर्शेन्द्रियपणे परिणमाते हैं, अनिष्टपणे अकान्तपणे यावत् दुःखरूप से परिणमाते हैं, सुख रूप से नहीं ।

---

५ अभिक्खणं आहारेंति—बारबार आहार करते हैं ।
६ अभिक्खणं परिणमेंति—बारबार आहार परिणमाते हैं ।
७ अभिक्खणं ऊससंति—बारबार उच्छ्वास लेते हैं ।
८ अभिक्खणं नीससंति—बारबार निःश्वास छोड़ते हैं ।
९ आहच्च आहारेंति—कदाचित् आहार करते हैं ।
१० आहच्च परिणमेंति—कदाचित् आहार परिणमाते हैं ।
११ आहच्च ऊससंति—कदाचित् उच्छ्वास लेते हैं ।
१२ आहच्च नीससंति—कदाचित् निःश्वास छोड़ते हैं ।

१०—अहो भगवान् ! नारकी के नेरीयों ने जिन पुद्गलों का पहले आहार किया है क्या वे पुद्गल परिणत हुए हैं?, २ अथवा जिन पुद्गलों का भूतकाल में आहार नहीं किया है किन्तु वर्तमान काल में आहार किया जा रहा है वे पुद्गल परिणत हुए हैं ? ३ अथवा जिन पुद्गलों का भूतकाल में आहार नहीं किया है किन्तु भविष्यत् काल में आहार किया जायगा वे पुद्गल परिणत हुए हैं ? ४ अथवा जिन पुद्गलों का भूतकाल में आहार नहीं किया है और भविष्यत् काल में भी आहार नहीं किया जायगा वे पुद्गल परिणत हुए हैं ? हे गौतम ! आहार किये हुए पुद्गल परिणत हुए हैं, २ आहार किया हुआ और आहार किये जाते हुए पुद्गल परिणत हुए हैं और परिणत होवेंगे, ३ आहार नहीं किये हुए पुद्गल और आहार किये जाने वाले पुद्गल परिणत नहीं हुए किन्तु परिणत होवेंगे, ४ आहार नहीं किये हुए पुद्गल और आहार नहीं किये जाने वाले पुद्गल परिणत नहीं हुए और परिणत नहीं होवेंगे।

१० से १५ तक—चिएया, उपचिएया, उदीरिया, वेदया और निर्जरया ये पांच बोल दसवें द्वार के अनुसार कह देने चाहिए।

१६—अहो भगवान् ! नारकी के नेरीये कितने प्रकार के पुद्गलों का भेदन करते हैं (भिज्जंति) ? हे गौतम ! कर्म

द्रव्य वर्गणा की अपेक्षा से दो प्रकार के पुद्गलों का भेदन करते हैं-सूक्ष्म और बादर।

१७—अहो भगवान् ! नारकी के नेरीये कितने प्रकार के पुद्गलों का चय (इकट्ठा) करते हैं ? हे गौतम ! आहार द्रव्य वर्गणा की अपेक्षा दो प्रकार के पुद्गलों का चय करते हैं-सूक्ष्म और बादर।

१८—चय कहा इस तरह ही उपचय कह देना चाहिये।

१९, २०, २१—अहो भगवान् ! नारकी के नेरीये कितने प्रकार के पुद्गलों की उदीरणा, वेदन और निर्जरा करते हैं ? हे गौतम ! कर्म द्रव्य वर्गणा की अपेक्षा से दो प्रकार के पुद्गलों की उदीरणा, वेदन और निर्जरा करते हैं- सूक्ष्म और बादर।

२२-२३-अहो भगवान् ! क्या नारकी के नेरीयों ने कर्मों का उद्वर्तन, अपवर्तन, संक्रमण निधत्त और निकाचित किये हैं, करते हैं, करेंगे ? हे गौतम ! नारकी के नेरीयों ने कर्मों का १ उद्वर्तन अपवर्तन, २ संक्रमण, ३ निधत्त और ४ निकाचित किये हैं, करते हैं, और करेंगे। ४×३=१२ अलावा हुए।

२४—अहो भगवान् ! क्या नारकी के नेरीये तैजस कार्मण शरीरपणे पुद्गलों को ग्रहण करते हैं ? यदि ग्रहण करते हैं तो क्या भूतकाल के समय से ग्रहण करते हैं ? अथवा वर्तमान काल के समय से ग्रहण करते हैं ? अथवा आगामी काल

की। दूसरे देवलोक के देवता की स्थिति जघन्य १ पल झाझेरी, उत्कृष्ट २ सागर झाझेरी। तीसरे देवलोक के देवता की स्थिति जघन्य २ सागर की, उत्कृष्ट ७ सागर की। चौथे देवलोक के देवता की स्थिति जघन्य २ सागर झाझेरी, उत्कृष्ट ७ सागर झाझेरी। पांचवें देवलोक के देवता की स्थिति जघन्य ७ सागर की, उत्कृष्ट १० सागर की। छठे देवलोक के देवता की स्थिति जघन्य १० सागर की, उत्कृष्ट १४ सागर की। सातवें देवलोक के देवता की स्थिति जघन्य १४ सागर की, उत्कृष्ट १७ सागर की। आठवें देवलोक के देवता की स्थिति जघन्य १७ सागर की, उत्कृष्ट १८ सागर की। नववें देवलोक के देवता की स्थिति जघन्य १८ सागर की, उत्कृष्ट १९ सागर की। दसवें देवलोक के देवता की स्थिति जघन्य १९ सागर की, उत्कृष्ट २० सागर की। ग्यारहवें देवलोक के देवता की स्थिति जघन्य २० सागर की, उत्कृष्ट २१ सागर की। बारहवें देवलोक के देवता की स्थिति जघन्य २१ सागर की, उत्कृष्ट २२ सागर।

पहले	ग्रैवेयकके	देवताकी	स्थिति	जघन्य	२२ सागर	उत्कृष्ट	२३	सागर
दूसरे	,,	,,	,,	,,	२३ ,,	,,	२४	,,
तीसरे	,,	,,	,,	,,	२४ ,,	,,	२५	,,
चौथे	,,	,,	,,	,,	२५ ,,	,,	२६	,,
पांचवें	,,	,,	,,	,,	२६ ,,	,,	२७	,,
छठे	,,	,,	,,	,,	२७ ,,	,,	२८	,,

सातवें	ग्रैवेयक के	देवता की	स्थिति	जघन्य	२८	सागर	उत्कृष्ट	२९	सागर
आठवें	,,	,,	,,	,,	२९	,,	,,	३०	,,
नववें	,,	,,	,,	,,	३०	,,	,,	३१	,,

चार अनुत्तर विमानों की स्थिति जघन्य ३१ सागर की उत्कृष्ट ३३ सागर की। सर्वार्थसिद्ध विमान की स्थिति नोजघन्य नोउत्कृष्ट ३३ सागर की है।

२ अहो भगवान्! १३ दण्डक के देवता कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं? हे गौतम! असुरकुमार के देवता जघन्य ७ थोव (स्तोक)* से, उत्कृष्ट १ पक्ष झाझेरे से। नवनिकाय के देवता और वाणव्यन्तर देवता जघन्य ७ थोव से, उत्कृष्ट ‡प्रत्येक मुहूर्त से। ज्योतिषी देवता जघन्य उत्कृष्ट प्रत्येक मुहूर्त से। पहले देवलोक के देवता जघन्य प्रत्येक मुहूर्त से, उत्कृष्ट २ पक्ष से। दूसरे देवलोक के देवता जघन्य प्रत्येक मुहूर्त झाझेरे से, उत्कृष्ट २ पक्ष झाझेरे से। तीसरे देवलोक के देवता जघन्य २ पक्ष से, उत्कृष्ट ७ पक्ष से। चौथे देवलोक के देवता जघन्य २ पक्ष झाझेरे से, उत्कृष्ट ७ पक्ष झाझेरे से। पांचवें देवलोक के देवता जघन्य ७ पक्ष से, उत्कृष्ट

---

* थोव (स्तोक)=हृष्ट पुष्ट नीरोग मनुष्य जो एक उच्छ्वास और निःश्वास लेता है उसे प्राण कहते हैं। ७ प्राण का एक स्तोक होता है। ७ स्तोक का एक लव होता है। ७७ लव का एक मुहूर्त होता है। ३० मुहूर्त का एक अहो रात्र होता है। १५ अहोरात्र का एक पक्ष होता है।

‡ २ से लेकर ९ तक की संख्या को प्रत्येक (पृथक्त्व) कहते हैं।

१० पक्ष से। छठे देवलोक के देवता जघन्य १० पक्ष से, उत्कृष्ट १४ पक्ष से। सातवें देवलोक के देवता जघन्य १४ पक्ष से, उत्कृष्ट १७ पक्ष से। आठवें देवलोक के देवता जघन्य १७ पक्ष से, उत्कृष्ट १८ पक्ष से। नववें देवलोक के देवता जघन्य १८ पक्ष से, उत्कृष्ट १९ पक्ष से। दसवें देवलोक के देवता जघन्य १९ पक्ष से, उत्कृष्ट २० पक्ष से। ग्यारहवें देवलोक के देवता जघन्य २० पक्ष से, उत्कृष्ट २१ पक्ष से। बारहवें देवलोक के देवता जघन्य २१ पक्ष से उत्कृष्ट २२ पक्ष से।

पहले	ग्रैवेयक	के	देवता	जघन्य २२	पक्ष	से उत्कृष्ट	२३	पक्ष से
दूसरे	,,	,,	,,	,, २३	,,	,,	२४	,,
तीसरे	,,	,,	,,	,, २४	,,	,,	२५	,,
चौथे	,,	,,	,,	,, २५	,,	,,	२६	,,
पांचवें	,,	,,	,,	,, २६	,,	,,	२७	,,
छठे	,,	,,	,,	,, २७	,,	,,	२८	,,
सातवें	,,	,,	,,	,, २८	,,	,,	२९	,,
आठवें	,,	,,	,,	,, २९	,,	,,	३०	,,
नववें	,,	,,	,,	,, ३०	,,	,,	३१	,,

चार अनुत्तर विमान के देवता जघन्य ३१ पक्ष से, उत्कृष्ट ३३ पक्ष से। सर्वार्थसिद्ध विमान के देवता नो जघन्य नो उत्कृष्ट *३३ पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं।

*जितने सागर की स्थिति होती है उतने ही पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं।

३—अहो भगवान्! क्या १३ दण्डक के देवता आहारट्ठी हैं (आहार की इच्छा वाले हैं)? हाँ गौतम! आहारट्ठी (आहार की इच्छा वाले) हैं।

४—अहो भगवान्! १३ दण्डक के देवता कितने प्रकार का आहार लेते हैं? हे गौतम! दो प्रकार का—१ आभोगणिव्वत्तिए (आभोगनिवर्तित-जानते हुए आहार करना), २ अणाभोगणिव्वत्तिए (अनाभोगनिवर्तित-नहीं जानते हुए आहार करना)। अहो भगवान्! १३ दण्डक के देवता कितने समय से आहार लेते हैं? हे गौतम! अणाभोगणिव्वत्तिए तो अनुसमय अविरह (विरह रहित निरन्तर) लेते हैं। आभोगणिव्वत्तिए असुरकुमार देवता जघन्य चउत्थ भत्त (चतुर्थ भक्त-एक दिन छोड़कर दूसरे दिन) से लेते हैं और उत्कृष्ट १००० वर्ष झाझेरे से लेते हैं। नवनिकाय के देवता और वाणव्यंतर देवता जघन्य चउत्थ भक्त से, उत्कृष्ट प्रत्येक दिवस (२ दिन से लेकर ६ दिन तक) से लेते हैं। ज्योतिषी देवता जघन्य उत्कृष्ट प्रत्येक दिवस से लेते हैं। पहले देवलोक के देवता जघन्य प्रत्येक दिवस से उत्कृष्ट २००० वर्ष से लेते हैं। इसी तरह सर्वार्थसिद्ध तक के देवता का कह देना चाहिए नवरं (किन्तु इतनी विशेषता है) पल्योपम में प्रत्येक दिवस कहना चाहिए और सागरोपम में १००० वर्ष कहना चाहिए। जिन देवों की स्थिति जितने सागर की होती है वे उतने ही हजार वर्षों से आहार ग्रहण करते हैं।

५—अहो भगवान्! १३ दण्डक के देवता कैसे पुद्गलों का आहार लेते हैं? हे गौतम! द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव यावत् २८८ बोलों का नियमा (निश्चित रूप से) ६ दिशा का आहार लेते हैं। बहुल प्रकार से (प्रायः-अधिकतर) वर्ण में पीला और सफेद, गंध में सुरभिगंध, रस में खट्टा और मीठा, स्पर्श में चार शुभस्पर्श (कोमल, लघु, उष्ण, स्निग्ध) पुद्गलों का आहार लेते हैं। पहले के खराब पुद्गलों को अच्छा बनाकर मनोज्ञ पुद्गलों का आहार लेते हैं।

६—अहो भगवान्! क्या १३ दंडक के देवता सव्वयो आहारेंति (सब आत्मप्रदेशों से आहार लेते हैं)? हे गौतम! सब आत्म-प्रदेशों से आहार लेते हैं यावत् १२ बोलों से आहार लेते हैं।

७—अहो भगवान्! १३ दण्डक के देवता आहार लेने योग्य पुद्गलों का कितना भाग आहार लेते हैं और कितना भाग आस्वादते हैं? हे गौतम! असंख्यातवें भाग आहार लेते हैं और अनन्तवें भाग आस्वादते हैं।

८—अहो भगवान्! १३ दण्डक के देवता जिन पुद्गलों को आहारपणे परिणमाते हैं क्या उन सब पुद्गलों का आहार करते हैं अथवा सब पुद्गलों का आहार नहीं करते हैं? हे गौतम! परिशेष रहित सब पुद्गलों का आहार करते हैं।

९—अहो भगवान्! १३ दण्डक के देवता आहार रूप से ग्रहण किये हुए पुद्गलों को किस रूप से परिणमाते हैं? हे

गौतम ! श्रोत्रेन्द्रियपणे यावत् स्पर्शेन्द्रियपणे परिणमाते हैं, सुख रूप से परिणमाते हैं, दुःखरूप से नहीं परिणमाते हैं।

१० से ४५ तक ये ३६ द्वार नारकी के नेरीयों की तरह कह देने चाहिये।

पांच स्थावर पर ४५ द्वार—

१—अहो भगवान् ! पांच स्थावर की स्थिति कितनी है ? हे गौतम ! पृथ्वीकाय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट २२००० वर्ष की। अप्काय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट ७००० वर्ष की। तेउकाय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की. उत्कृष्ट ३ अहोरात्रि की। वायु काय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट ३००० वर्ष की,। वनस्पतिकाय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट १०००० वर्ष की।

२-अहो भगवान् ! पांच स्थावर कितने समय से श्वासोच्छ्वास लेते हैं ? हे गौतम ! *वेमाया (विमात्रा) से श्वासोच्छ्वास लेते हैं।

अहो भगवान् ! क्या पांच स्थावर के जीव आहार की इच्छा करते हैं ? हाँ, गौतम ! आहार की इच्छा करते हैं।

---

* विषम अथवा विविध काल विभाग को वेमाया (विमात्रा) कहते हैं अर्थात् 'यह इतने समय से श्वासोच्छ्वास लेता है' इस प्रकार निश्चय न किया जा सके उसको वेमाया (विमात्रा) कहते हैं।

४–अहो भगवान् ! पांच स्थावर के जीव कितने समय से आहार लेते हैं ? हे गौतम ! अनुसमय अविरह (निरन्तर) अणाभोग णिव्वत्तिए आहार लेते हैं।

५–अहो भगवान् ! पांच स्थावर के जीव कैसा आहार लेते हैं ? हे गौतम ! द्रव्य क्षेत्र काल भाव यावत् २८८ बोलों का आहार लेते हैं। व्याघात आसरी जघन्य ३ दिशा का, मध्यम ४ दिशा का उत्कृष्ट ५ दिशा का लेते हैं। निर्व्याघात आसरी नियमा ६ दिशा का लेते हैं। वर्ण में काला नीला लाल पीला और सफेद, गंध में सुरभिगंध दुरभिगंध, रस में तीखा, कड़वा, कषैला, खट्टा मीठा। स्पर्श में कर्कश आदि आठों स्पर्श का आहार लेते हैं।

६—अहो भगवान् ! क्या पांच स्थावर के जीव सब आत्मप्रदेशों से आहार लेते हैं ? हाँ गौतम ! सब आत्मप्रदेशों से यावत् १२ बोलों से आहार लेते हैं।

७—अहो भगवान् ! पांच स्थावर आहार लेने योग्य पुद्गलों का कितना भाग आहार लेते हैं, कितना भाग स्पर्श करते हैं ? हे गौतम ! असंख्यातवें भाग आहार लेते हैं और अनन्तवें भाग स्पर्श करते हैं।

८—अहो भगवान् ! पांच स्थावर जिन पुद्गलों को आहारपणे परिणमाते हैं क्या उन सब पुद्गलों का आहार करते हैं या सब पुद्गलों का आहार नहीं करते हैं ? हे गौतम ! सब पुद्गलों का आहार करते हैं।

९—अहो भगवान् ! पांच स्थावर जिन पुद्गलों को आहार रूप से ग्रहण करते हैं। उन पुद्गलों को किस रूप से परिणमाते हैं ? हे गौतम ! विविध रूप से स्पर्शेन्द्रियपने परिणमाते हैं।

१० से ४५ तक के ३६ द्वार नारकी की तरह कह देने चाहिये।

तीन विकलेन्द्रियों पर ४५ द्वार—

१—अहो भगवान् ! विकलेन्द्रियों की स्थिति कितनी है ? हे गौतम ! विकलेन्द्रियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट बेइन्द्रिय की १२ वर्ष की, तेइन्द्रिय की ४९ अहोरात्रि की, चौइन्द्रिय की ६ महीनों की है।

२—अहो भगवान् ! विकलेन्द्रिय कितने समय से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। हे गौतम ! वेमाया (विमात्रा) से श्वासोच्छ्वास लेते हैं।

३—अहो भगवान् ! क्या विकलेन्द्रिय आहार की इच्छा करते हैं ? हाँ, गौतम ! आहार की इच्छा करते हैं।

४—विकलेन्द्रिय कितने समय से आहार लेते हैं ? हे गौतम ! अणाभोगणिव्वत्तिए आहार तो विरह रहित निरन्तर लेते हैं और आभोगणिव्वत्तिए आहार असंख्यात समय के अन्तर्मुहूर्त से लेते हैं।

५—अहो भगवान् ! तीन विकलेन्द्रिय कैसे पुद्गलों का आहार लेते हैं ? हे गौतम ! द्रव्य क्षेत्र काल भाव यावत् २८८

बोलों का नियमा ६ दिशा का आहार लेते हैं। वर्णादिक के पहले के गुण मिटा कर नये गुण प्रकट करते हैं।

६—अहो भगवान्! क्या तीन विकलेन्द्रिय सब आत्म-प्रदेशों से आहार लेते हैं? हाँ, गौतम! सब आत्मप्रदेशों से यावत् १२ बोलों से आहार लेते हैं।

७—अहो भगवान्! तीन विकलेन्द्रिय आहार लेने योग्य पुद्गलों का कितना भाग आहार लेते हैं, कितना भाग आस्वाद करते हैं? हे गौतम! असंख्यातवें भाग आहार लेते हैं और अनन्तवें भाग आस्वाद करते हैं।

८—अहो भगवान्! तीन विकलेन्द्रिय जिन पुद्गलों को आहारपणे परिणमाते हैं क्या उन सब पुद्गलोंका आहार करते हैं या सब पुद्गलों का आहार नहीं करते हैं? हे गौतम! विक-लेन्द्रिय का आहार दो प्रकार का है–रोम आहार (रुवों द्वारा समय समय लेवे), कवल आहार (प्रक्षेप आहार–जो मुँह द्वारा खाया जाय)। रोम आहारपणे ग्रहण किये हुवे सब पुद्-गल खा लेते हैं कवल आहार में लेने योग्य पुद्गलों का असंख्यातवां भाग का आहार करते हैं और अनेक हजारों भाग बेइन्द्रिय में स्वाद लिये बिना और स्पर्श किये बिना नष्ट हो जाते हैं। तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय में सूंघे बिना, स्वाद लिये बिना, स्पर्श किये बिना नष्ट हो जाते हैं। बेइन्द्रिय में सब से थोड़ा पुद्गल अस्वाद्या उससे अस्पर्श्या पुद्गल अनन्तगुणा। तेइ-

न्द्रिय चौइन्द्रिय में सबसे थोड़ा पुद्गल असंख्या उससे अस्वाद्या पुद्गल अनन्तगुणा उससे अस्पर्श्या पुद्गल अनन्तगुणा।

६—अहो भगवान् ! तीन विकलेन्द्रिय आहारपणे ग्रहण किये हुए पुद्गलों को किस रूप में परिणमाते हैं ? हे गौतम ! बेइन्द्रिय वेमाया से रसनेन्द्रियपणे स्पर्शेन्द्रियपणे परिणमाते हैं। तेइन्द्रिय वेमाया से घ्राणेन्द्रिय रसनेन्द्रिय स्पर्शेन्द्रियपणे परिणमाते हैं। चौइन्द्रिय वेमाया से चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय रसनेन्द्रिय स्पर्शेन्द्रियपणे परिणमाते हैं।

१० से ४५ तक के ३६ द्वार नारकी की तरह कह देने चाहिए।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य पर ४५ द्वार—

१—अहो भगवान् ! तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय की और मनुष्य की स्थिति कितनी है ? हे गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट ३ पल्योपम की।

२—अहो भगवान् ! तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य कितने समय से श्वासोच्छ्वास लेते हैं ? हे गौतम ! वेमाया (विमात्रा) से श्वासोच्छ्वास लेते हैं।

३—अहो भगवान् ! क्या तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य आहार की इच्छा करते हैं ? हाँ गौतम ! आहार की इच्छा करते हैं।

४—अहो भगवान् ! तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य कितने समय से आहार लेते हैं ? हे गौतम ! तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य अणाभोग णिव्वत्तिय आहार तो विरह रहित निरन्तर लेते हैं। आभोगणिव्वत्तिय आहार जघन्य अन्तर्मुहूर्त से और उत्कृष्ट तिर्यंच पंचेन्द्रिय दो दिन के अन्तर से और मनुष्य तीन दिन के अन्तर से लेते हैं।

५ –अहो भगवान् ! तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य कैसे पुद्गलों का आहार लेते हैं ? हे गौतम ! द्रव्य क्षेत्र काल भाव यावत् २८८ बोलों का नियमा ६ दिशा का आहार लेते हैं। पहले के वर्णादिक गुण मिटा कर नये गुण प्रकट करते हैं।

६—अहो भगवान् ! क्या तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य सब आत्म प्रदेशों से आहार लेते हैं ? हाँ गौतम ! सब आत्म-प्रदेशों से यावत् १२ बोलों से आहार लेते हैं।

७—अहो भगवान ! तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य आहार लेने योग्य पुद्गलों का कितना भाग आहार लेते हैं, कितना भाग आस्वाद करते हैं ? हे गौतम ! असंख्यातवां भाग आहार लेते हैं और अनन्तवां भाग आस्वाद करते हैं।

८—अहो भगवान ! तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य जिन पुद्गलों को आहारपणे परिणमाते हैं, क्या उन सब पुद्गलों का आहार करते हैं या सब पुद्गलों का आहार नहीं करते हैं ? हे गौतम ! अणाभोगणिव्वत्तिय आहार तो विरह रहित निरन्तर लेते हैं।

आभोगणिव्वत्तिय आहार लेने योग्य पुद्गलों का असंख्यातवा भाग लेते हैं। अनेक हजारों भाग पुद्गल सूंघे बिना स्वाद लिये बिना स्पर्श किये बिना नष्ट हो जाते हैं।

९—अहो भगवान्! तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य आहार-पणे ग्रहण किये हुए पुद्गलों को किस रूप से परिणमाते हैं? हे गौतम! वेमाया से श्रोत्रेन्द्रियपणे यावत् स्पर्शेन्द्रियपणे परिणमाते हैं।

१० से ४५ तक के ३६ द्वार नारकी की तरह कह देने चाहिए।

सेवं भंते! सेवं भंते!!

(थोकड़ा नं० ३)

श्री भगवतीजी सूत्र के पहले शतक के पहले उद्देशे में आत्मारम्भी परारम्भी का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

१—अहो भगवान्! क्या जीव *आत्मारम्भी है या परारम्भी है या तदुभयारम्भी है या अनारम्भी है? हे गौतम! जीव

---

*आरम्भ का अर्थ है ऐसा सावद्य कार्य करना जिससे किसी जीव को कष्ट पहुँचता हो या उसके प्राणों का घात होता हो अर्थात् आस्रव-द्वार में प्रवृत्ति करना आरम्भ कहलाता है।

आत्मारम्भ के दो अर्थ हैं—आस्रव द्वार में आत्मा को प्रवृत्त करना और आत्मा द्वारा स्वयं आरम्भ करना। जो ऐसा करता है वह आत्मा-

के दो भेद हैं–संसार समापन्न यानी संसारी और असंसार समापन्न यानी सिद्ध। सिद्ध भगवान् तो न आत्मारम्भी हैं, न परारम्भी हैं, न तदुभयारम्भी हैं किन्तु अनारम्भी हैं। संसारी जीव के दो भेद हैं—संयति और असंयति। संयति के दो भेद हैं—प्रमादी और अप्रमादी। अप्रमादी संयति तो न आत्मारम्भी हैं, न परारम्भी हैं, न तदुभयारम्भी हैं किन्तु अनारम्भी हैं। प्रमादी के दो भेद हैं—शुभयोगी और अशुभयोगी। शुभयोगी तो न आत्मारम्भी हैं, न परारम्भी हैं, न तदुभयारम्भी हैं किन्तु अनारम्भी हैं। अशुभयोगी आत्मारम्भी भी हैं, परारम्भी भी हैं, तदुभयारम्भी भी हैं किन्तु अनारम्भी नहीं हैं। अशुभ योगी की तरह असंयति और २३ दण्डक कह देने चाहिये। मनुष्य समुच्चय जीव की तरह कह देना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि संसारी और सिद्ध ये दो भेद नहीं कहने चाहिए। सलेशी (लेश्यासहित) समुच्चय मनुष्य की तरह कहना। कृष्ण, नील, कापोत लेश्या वाले २२ दण्डक आत्मारम्भी हैं, परारम्भी हैं तदुभयारम्भी हैं किन्तु अनारम्भी नहीं हैं, समुच्चय

रम्भी कहलाता है। दूसरे को आश्रव में प्रवृत्त करना या दूसरे के द्वारा आरम्भ कराना परारम्भ है, जो ऐसा करता है वह परारम्भी कहलाता है। आत्मारम्भ और परारम्भ दोनों करने वाला जीव उभयारम्भी कहलाता है। जो जीव आत्मारम्भ, परारम्भ और उभयारम्भ से रहित होता है वह अनारम्भी कहलाता है।

(श्री भगवती सूत्र पर श्री जवाहिराचार्य के व्याख्यान भाग २ पृष्ठ ४८९)

जीव तेजोलेशी १८ दण्डक, पद्मलेशी शुक्ललेशी तीन तीन दण्डक मनुष्य की तरह कह देना चाहिए ❀।

सेवं भंते ! सेवं भंते !!

(थोकड़ा नं० ४)

श्री भगवतीजी सूत्र के पहले शतक के पहले उद्देशे में 'इह भविए णाणे पर भविए णाणे' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

१—अहो भगवान् ! क्या ज्ञान इहभविक (इस भव में) है या परभविक (पर भव में) है या तदुभय भविक (दोनों-भवों में) है ? हे गौतम ! ज्ञान इहभविक भी है, परभविक भी है और तदुभय भविक भी है।

२—अहो भगवान् ! क्या दर्शन इहभविक है या परभविक है या तदुभय भविक है ? हे गौतम ! दर्शन इहभविक भी है, परभविक भी है और तदुभयभविक भी है।

३—अहो भगवान् ! क्या चारित्र इहभविक है या परभविक है या तदुभयभविक है ? हे गौतम ! चारित्र इहभविक है किन्तु

❀ कृष्ण, नील, कापोत, इन तीन भाव लेश्याओं में साधुपना नहीं होता। यहाँ जो लेश्याएं कही गई हैं वे द्रव्य लेश्याएं समझनी चाहिये। (टीका)

परभविक नहीं है, तदुभयभविक नहीं है। इसी तरह तप और संयम भी इहभविक है किन्तु परभविक और तदुभयभविक नहीं है।

सेवं भंते ! सेवं भंते !!

(थोकड़ा नं० ४)

श्री भगवतीजी सूत्र के पहले शतक के पहले उद्देशे में संवुडा असंवुडा अणगार' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

१—अहो भगवान् ! क्या असंवुडा अणगार (जिसने आश्रवों को नहीं रोका है ऐसा साधु) सिद्ध होता है? बोध (केवलज्ञान) को प्राप्त करता है, ? मुक्त होता है ? निर्वाण को प्राप्त होता है ? सब दुःखों का अन्त करता है ? हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे (यह बात नहीं हो सकती)। अहो भगवान् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! आयुष्य कर्म को छोड़ कर बाकी ७ कर्म ढीले (शिथिल) हों तो गाढे (मजबूत) करता है, थोड़े काल की स्थिति हो तो दीर्घ काल की स्थिति करता है, मन्द रस हो तो तीव्र रस करता है, थोडे प्रदेश वाले कर्मों को बहुत प्रदेश वाले करता है। आयुष्य कर्म कदाचित् बांधता है, कदाचित् नहीं बांधता। असाता वेदनीय कर्म बारबार बांधता है। अनन्त संसार में परिभ्रमण करता है। इस कारण से असंवुडा अनगार सिद्ध नहीं होता यावत् सब दुःखों का अन्त नहीं करता।

२—अहो भगवान्! क्या संवुडा अनगार (जिसने आश्रवों को रोक दिया है ऐसा साधु) सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अन्त करता है? हाँ, गौतम! संवुडा अनगार सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है। अहो भगवान्! इसका क्या कारण है? हे गौतम! संवुडा अनगार आयुष्य कर्म को छोड़ कर बाकी सात कर्मों को गाढ़े हों तो ढीला करता है, बहुत काल की स्थिति हो तो थोड़े काल की स्थिति करता है, तीव्र रस हो तो मंद रस करता है, बहुत प्रदेश वाले कर्मों को थोड़े प्रदेश वाले करता है। आयुष्य कर्म को नहीं बांधता। असाता वेदनीय कर्म बारबार नहीं बांधता। अनादि अनंत चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण नहीं करता। इसलिये संवुडा (संवृत) अनगार सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अन्त करता है।

सेवं भंते! सेवं भंते!!

(थोकड़ा नं० ६)

श्री भगवतीजी सूत्र के पहले शतक के दूसरे उद्देशे में १०० बोल का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

१—अहो भगवान्! क्या एक जीव अपने किये हुए दुःख को भोगता है? हे गौतम! कोई जीव भोगता है और कोई जीव नहीं भोगता है। अहो भगवान्! इसका क्या कारण है? हे गौतम! जिस जीव के कर्म उदय में आया है वह भोगता है और जिसके उदय में नहीं आया है वह नहीं भोगता है। इसी

तरह एक जीव आसरी २४ दण्डक कह देने चाहिए। समुच्चय एक जीव का १ अलावा (आलापक-भेद) और २४ दण्डक के २४ अलावा। ये कुल २५ अलावा हुए।

२—अहो भगवान्! क्या बहुत जीव अपने किये हुए दुःखों को भोगते हैं? हे गौतम! कोई भोगते हैं और कोई नहीं भोगते हैं। अहो भगवान्! इसका क्या कारण है? हे गौतम! जिन जीवों के कर्म उदय में आये हैं वे भोगते हैं और जिनके उदय में नहीं आये हैं वे नहीं भोगते हैं। इसी तरह बहुत जीव आसरी २४ दण्डक कह देने चाहिए। समुच्चय बहुत जीव आसरी १ अलावा और २४ दण्डक के २४ अलावा। ये कुल २५ अलावा हुए।

३—अहो भगवान्! क्या एक जीव अपने बांधे हुए आयुष्य कर्म को भोगता है? हे गौतम! कोई भोगता है और कोई नहीं भोगता है। अहो भगवान्! इसका क्या कारण है? हे गौतम! जिस जीव के आयुष्य कर्म उदय में आया है वह भोगता है और जिस जीव के आयुष्य कर्म उदय में नहीं आया है वह नहीं भोगता है। इसी तरह एक जीव आसरी २४ दण्डक कह देने चाहिए १ + २४=२५ अलावा हुए।

४—अहो भगवान्! क्या बहुत जीव अपने बांधे हुए आयुष्य कर्म को भोगते हैं? हे गौतम! कोई भोगते हैं और कोई नहीं भोगते हैं। अहो भगवान्! इसका क्या कारण है? हे गौतम!

जिन जीवों के आयुष्य कर्म उदय में आया है वे भोगते हैं और जिन जीवों के उदय में नहीं आया है वे नहीं भोगते हैं। इसी तरह बहुत जीव आसरी २४ दण्डक कह देने चाहिये। १+२४=२५ अलावा हुए। २५+२५+२५+२५=१०० कुल १०० अलावा हुए।

सेवं भंते ! सेवं भंते !!

(थोकड़ा नं० ७)

श्री भगवतीजी सूत्र के पहले शतक के दूसरे उद्देशे में १२४२ अलावों का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

आहारसमसरीरा, उस्सासे कम्म वण्ण लेस्सासु ।
समवेयण समकिरिया, समाउया चेव बोद्धव्वा ॥

अर्थ—आहार द्वार, २ समशरीर द्वार, ३ श्वासोच्छ्वास द्वार, ४ कर्म द्वार, ५ वर्ण द्वार, ६ लेश्या द्वार, ७ समवेदना द्वार, ८ समक्रिया द्वार, ९ सम आयुष्य द्वार।

इन नौ द्वारों का विस्तार श्री पन्नवणा सूत्र के १७ वें पद के पहले उद्देशे के अनुसार कह देना चाहिए ※।

※ यह थोकड़ा इस संस्था से प्रकाशित 'श्री पन्नवणा सूत्र के थोकड़ों का दूसरा भाग' नामक पुस्तक के पत्र ४६ से ६१ तक में है।

१२४२ अलावों की गिनती इस प्रकार है—

समुच्चय के	२१६
सलेशी के	२१६
कृष्ण नील कपोत लेश्या के	५६४
तेजो लेश्या के	१६२
पद्मलेश्या के	२७
शुक्ल लेश्या के	२७

कुल १२४२ अलावा हुए।

सेवं भंते ! सेवं भंते !!

(थोकड़ा नं० ८)

श्री भगवतीजी सूत्र के पहले शतक के दूसरे उद्देशे में 'संसार संचिट्ठण काल' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

चउ संचिट्ठणा होइ, कालो सुएणासुएण मीसो ।
तिरियाणं सुएणवज्जो, सेसे तिएिण अप्पाबहू ॥

१—अहो भगवान् ! *संसार संचिट्ठण काल (संसार संस्थान काल) कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! चार प्रकार

* 'यह जीव अतीत (भूत) काल में किस गति में रहा था' यह बतलाना 'संसार संचिट्ठणकाल' कहलाता है।

का है—१ नारकी संसार संचिट्ठण काल, २ तिर्यंच संसार संचिट्ठण काल, ३ मनुष्यसंसार संचिट्ठणकाल, ४ देवसंसारसंचिट्ठण काल।

२—अहो भगवान्! नारकीसंसारसंचिट्ठणकाल कितने प्रकार का है? हे गौतम! तीन प्रकार का-१ सुण्णकाल (शून्यकाल), २ असुण्ण काल (अशून्य काल), ३ मिश्र काल। इसी तरह मनुष्य और देवता में भी संसार संचिट्ठण काल तीन तीन पाते हैं। तिर्यंच में संसारसंचिट्ठण काल दो पाते हैं—असुण्णकाल और मिश्रकाल।

---

१ एक नारकी का नेरीया नारकी से निकल कर दूसरी गति में उत्पन्न हुआ, वहाँ से फिर पीछा नारकी में उत्पन्न हुआ, वह जितने नेरीयों को सातों नारकियों में छोड़ कर गया था उनमें से एक भी वहाँ न मिले अर्थात् नरकों से निकल कर दूसरी गतियों में चले गये हों उसे सुण्णकाल (शून्यकाल) कहते हैं।

२ एक नारकी का नेरीया नरक से निकल कर दूसरी गति में उत्पन्न हुआ, फिर वहाँ से वापिस नरक में उत्पन्न हुआ, वह जितने नेरीयों को छोड़ कर गया था उतने सब वहाँ मिलें अर्थात् वहाँ से एक भी मरा न हो और एक भी नया आकर उत्पन्न न हुआ हो उसे असुण्णकाल (अशून्यकाल) कहते हैं।

३ एक नारकी का नेरीया नरक से निकल कर दूसरी गति में उत्पन्न हुआ, वहाँ से वापिस पीछा नरक में उत्पन्न हुआ, वह जितने नेरीयों को छोड़कर गया था उनमें से कुछ निकल कर दूसरी गति में चले गये हों और कुछ नये उत्पन्न हो गये हों, यहाँ तक कि पहले नेरीयों में से एक भी नेरीया वहाँ मिले उसे मिश्र काल कहते हैं।

३—अहो भगवान् ! नारकी में कौनसा काल थोड़ा (अल्प) है और कौनसा काल बहुत है ? हे गौतम ! सब से थोड़ा असुण्ण काल, उससे मिश्रकाल अनन्तगुणा, उससे सुण्णकाल अनन्तगुणा। इसी तरह मनुष्य देवता की अल्पाबोध (अल्प बहुत्व) कह देनी चाहिए। तिर्यञ्च में सबसे थोड़ा असुण्णकाल, उससे मिश्रकाल अनन्तगुणा है।

४—अहो भगवान् ! चार प्रकार के संसारसंचिट्ठणकाल में कौन सा थोड़ा और कौन सा बहुत है ? हे गौतम ! सब से थोड़ा मनुष्यसंसारसंचिट्ठण काल, उस से नारकी संसार संचिट्ठणकाल, असंख्यातगुणा, उससे देवता संसारसंचिट्ठण काल असंख्यातगुणा, उससे तिर्यंच संसार संचिट्ठण काल अनन्तगुणा है।

सेवं भंते ! सेवं भंते !!

(थोकड़ा नं० ९)

श्री भगवतीजी सूत्र के पहले शतक के दूसरे उद्देशे में 'असंजति (असंयत) भव्य द्रव्य देव' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

१—अहो भगवान् ! *असंजति (असंयत) भव्य द्रव्य

*ऊपर से साधु की क्रिया करने वाले किन्तु भाव से चारित्र के परिणामों से रहित मिथ्यादृष्टि जीव असंजति (असंयत) भव्य द्रव्यदेव कहे गये हैं।

देव मर कर कहाँ उत्पन्न होता है ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट ऊपर के (नववें) ग्रैवेयक में उत्पन्न होता है।

२—अहो भगवान् ! अविराधक साधुजी मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य पहले देवलोक में, उत्कृष्ट सर्वार्थसिद्ध में उत्पन्न होते हैं।

३—अहो भगवान् ! विराधक साधुजी मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट पहले देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

४—अहो भगवान् ! अविराधक श्रावक मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य पहले देवलोक में, उत्कृष्ट बारहवें देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

५—अहो भगवान् ! विराधक श्रावक मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट ज्योतिषी में उत्पन्न होते हैं।

६—अहो भगवान् ! असन्नी (बिना मन वाले जीव अकाम निर्जरा करने वाले) तिर्यंच मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट वाणव्यन्तर में उत्पन्न होते हैं।

७—अहो भगवान् ! कन्द मूल भक्षण करने वाले तापस मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट ज्योतिषी में उत्पन्न होते हैं।

८—अहो भगवान् ! कन्दर्पिया-कान्दर्पिक (हँसी मजाक करने वाले) साधु मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट पहले देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

९—अहो भगवान् ! चरक, परिव्राजक, अम्बड़जी के मत के संन्यासी मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट पांचवें देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

१०—किल्विषी भावना वाले तथा आचार्य उपाध्याय आदि के अवर्णवाद बोलने वाले साधु मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट छठे देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

११—अहो भगवान् ! देशविरति सम्यग्दृष्टि सन्नी तिर्यञ्च मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट आठवें देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

१२—अहो भगवान् ! आजीविय–आजीविक (गोशालक) मत के मानने वाले साधु मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट बारहवें देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

१३—अहो भगवान्! आभियोगिक (मंत्र जंत्रादि करने वाले साधु) मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं? हे गौतम! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट बारहवें देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

१४—अहो भगवान्! सलिंगी दंसण वावण्णगा (साधु के लिंग को धारण करने वाले समकित से भ्रष्ट निन्हव आदि) मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं? हे गौतम! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट ऊपर के (नवमें) ग्रैवेयक में उत्पन्न होते हैं।

सेवं भंते! सेवं भंते!!

(थोकड़ा नं० १०)

श्री भगवतीजी सूत्र के पहले शतक के दूसरे उद्देशे में '*असन्नी-असंज्ञी आयुष्य' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

१—अहो भगवान्! असंज्ञी आयुष्य कितने प्रकार का है? हे गौतम! चार प्रकार का है—नारकी असंज्ञी आयुष्य, तिर्यंच असंज्ञी आयुष्य, मनुष्य असंज्ञी आयुष्य, देव असंज्ञी आयुष्य।

२—अहो भगवान्! असंज्ञी आयुष्य की स्थिति कितनी है? हे गौतम! नारकी देवता के असंज्ञी आयुष्य की स्थिति जघन्य १०००० वर्ष की, उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग

---

*असन्नी-असंज्ञी आयुष्य-जो जीव असंज्ञी अवस्था में अगले भव का आयुष्य बांधे उसको यहां पर 'असन्नी-असंज्ञी आयुष्य' कहा गया है।

की। मनुष्य, तिर्यंच के असंज्ञी आयुष्य की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की है।

३—अहो भगवान्! इस चार प्रकार के असंज्ञी आयुष्य में कौन थोड़ी और कौन बहुत है? हे गौतम! सब से थोड़ी देवता असंज्ञी आयुष्य, २ उससे मनुष्य असंज्ञी आयुष्य असंख्यात गुणा, ३ उससे तिर्यंच असंज्ञी आयुष्य असंख्यात गुणा, ४ उससे नारकी असंज्ञी आयुष्य असंख्यातगुणा।

सेवं भंते! सेवं भंते!!

(थोकड़ा नं० ११)

श्री भगवतीजी सूत्र के पहले शतक के तीसरे उद्देशे में 'कंखा मोहनीय' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

कड चिया उवचिया, उदीरिया वेइया य णिज्जिण्णा।
आदितिए चउभेया, तियभेया पच्छिमा तिण्णि ॥ १ ॥

१—अहो भगवान्! क्या जीव *कंखामोहनीय (कांक्षा-मोहनीय–मिथ्यात्व मोहनीय) कर्म करता है? हाँ, गौतम! करता है।

---

* मोहनीय कर्म के दो भेद हैं—दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय। यहाँ दर्शन मोहनीय की अपेक्षा से कंखा मोहनीय कहा है।

२—अहो भगवान् ! क्या *देश (अंश) से देश करता है (जीव का एक अंश, कंखामोहनीय कर्म के एक अंश को करता है) ? अथवा देश से सर्व करता है ? अथवा सर्व से देश करता है ? अथवा सर्व से सर्व करता है ? हे गौतम ! देश से देश नहीं करता, देश से सर्व नहीं करता, सर्व से देश नहीं करता, किन्तु सर्व से सर्व करता है। इसी तरह नारकी आदि २४ ही दण्डक कह देने चाहिए। समुच्चय जीव और २४ दण्डक, ये २५ अलावा हुए।

तीन काल आसरी—जीव ने कंखामोहनीय कर्म किया था, करता है और करेगा, ये ७५ अलावा हुए। २५ (समुच्चय के) + ७५ (तीन काल आसरी) ये १०० अलावा हुए।

इसी तरह ‡चय के १०० अलावा होते हैं (समुच्चय के

---

* यहाँ चार भांगे हैं—
१ देसेणं देसं
२ देसेणं सव्वे
३ सव्वेणं देसं
४ सव्वेणं सव्वं

जीव के प्रदेश जितने आकाश प्रदेश रोकते हैं (आकाश प्रदेश पर रहे हुए हैं), वहाँ पर रहे हुए कर्म वर्गणा के पुद्गल को एक समय में जितने ग्रहण होते हैं, उन सब को जीव लेता है इसीलिए 'सव्वेणं सव्वे' भांगा बनता है। शेष तीन भांगे नहीं बनते।

‡ कर्म-वर्गणा के प्रदेश और अनुभाग का एक बार बंधना 'चय' कहलाता है और बार-बार बंधना 'उपचय' कहलाता है।

२५ और तीन काल आसरी चय किया, चय करता है, चय करेगा, ये ७५=१०० अलावा हुए)। इसी तरह उपचय के भी १०० अलावा होते हैं। ‡उदीरणा, वेदना, निर्जरा इन तीन पदों में समुच्चय के नहीं कहना, तीन काल आसरी कहना— उदीरणा की थी उदीरणा करता है, उदीरणा करेगा। वेदा वेदन किया था वेदता है (वेदन करता है) वेदेगा (वेदन करेगा) निर्जरा की थी, निर्जरा करता है, निर्जरा करेगा । इस प्रकार उदीरणा, वेदना, और निर्जरा इन तीन पदों के २२५ अलावा हुए। सब मिला कर ५२५ अलावा हुए।

१ उदय में आये हुए कर्मों को वेदना, २ उदयमें नहीं आये हुए कर्मों को उपशमाना, ३ उदय में आने वाले कर्मों की उदीरणा करना, ४ उदय में आये हुए कर्मों को भोगना, ५ भोगे हुए कर्मों की निर्जरा करना, इन सब में १ उट्ठाण (उत्थान), २ कर्म, ३ बल,

---

‡ उदीरणा—उदय में नहीं आये हुए कर्मों को करणविशेष से उदय में लाना उदीरणा कहलाती है।

वेदना—कर्मों का अनुभव करना वेदना कहलाता है।

निर्जरा—आत्मप्रदेशों से कर्मों का पृथक् हो जाना निर्जरा कहलाती है।

कड (किया), चय, उपचय इन तीन में १०० १०० अलावा होते हैं, इसका कारण यह है कि इन तीनों का काल लम्बा है। उदीरणा, वेदना, निर्जरा इन तीनों का काल थोड़ा होने से समुच्चय के २५ अलावा नहीं होते हैं। सिर्फ ७५—७५ अलावा ही होते हैं।

४ वीर्य, ५ पुरुषकार पराक्रम इन ५ शक्ति का प्रयोग करना =५×५=२५ द्वार हुए। ये २५ द्वार समुच्चय जीव और २४ दण्डक पर कहना=२५×२५=६२५ अलावा हुए।

समुच्चय जीव और पंचेन्द्रिय के १६ दण्डक (नारकी का १, भवनपति के १०, वाण व्यन्तर का १, ज्योतिषी का १, वैमानिक का १, तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय का १ और मनुष्य का १ ये १६) ये १६ दण्डक के जीव और समुचय जीव ये १७ मिथ्यात्वी की बात सुन कर नाना कारण से १ संका (शंका), २ कंखा, (कांचा), ३ वितिगिच्छा (विचिकित्सा, ४ मति भेद और ५ कलुष भाव इन पांच बोलों से कंखा मोहनीय (मिथ्यात्व मोहनीय) कर्म वेदते हैं =१७×५=८५ अलावा हुए।

५ स्थावर, ३ विकलेन्द्रिय ये आठ दण्डक के जीव शंका आदि ५ बोलों से कंखा मोहनीय कर्म अजानते हुए वेदते हैं =८×५=४० अलावा हुए।

※ (१) ज्ञान, (२) दर्शन, (३) चारित्र, (४) लिंग, (५) प्रवचन, (६) प्रावचनिक (बहुश्रुत), ७ कल्प (जिनकल्प स्थविर कल्प), ८ मार्ग (परम्परा की समाचारी–कायोत्सर्ग करना आदि) ९ मत (आचार्यों का अभिप्राय) १० भंग (भांगा) ११ नय (नैगम आदि सात नय), १२

※ इन तेरह बोलों का अन्तर विस्तार पूर्वक इससे आगे के थोकड़े नं० १२ में दिया गया है।

नियम (प्रतिज्ञा, अभिग्रह), १३ प्रमाण (प्रत्यक्ष आदि प्रमाण)। इन तेरह बोलों में परस्पर अन्तर जान कर श्रमण निर्ग्रन्थ कंखा मोहनीय कर्म वेदता है। जो जीव भगवान् के वचनों में संका कंखा नहीं करते हैं वे आज्ञाके आराधक होते हैं।

१ अज्ञान, २ संशय, ३ मिथ्याज्ञान, ४ राग, ५ द्वेष, ६ मतिभ्रम, ७ धर्म में अनादर, ८ अशुभ योग, इन आठ प्रकार के प्रमाद से और योग के निमित्त से जीव कंखा मोहनीय कर्म बान्धता है।

प्रमाद योग से उत्पन्न होता है, योग वीर्य से, वीर्य शरीर से और शरीर जीव से उत्पन्न होता है। इसलिए उत्थान, कर्म, बल, वीर्य पुरुषकार पराक्रम हैं।

सेवं भंते ! सेवं भंते !!

(थोकड़ा न० १०)

श्री भगवतीजी सूत्र के पहले शतक के तीसरे उद्देशे में 'श्रमण निर्ग्रन्थ १३ कारणों से कंखा मोहनीय कर्म वेदते हैं' जिसका थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

अहो भगवान् ! क्या श्रमण निर्ग्रन्थ कंखा मोहनीय कर्म वेदते हैं ? हाँ गौतम ! वेदते हैं। अहो भगवान् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! १३ कारण हैं—

१ नाणंतरेहिं (ज्ञानान्तर से)—एक ज्ञान से दूसरे ज्ञान के विषय में शंका उत्पन्न होती है, जैसे—अवधिज्ञानी १४ राजुलोक के परमाणु आदि सब रूपी द्रव्यों को जानता है और मनःपर्ययज्ञानी अढाई द्वीप में संज्ञी जीव के मनकी बात को जानता है। अवधिज्ञान तीसरा ज्ञान है वह ज्यादा जानता है और मनःपर्यय ज्ञान चौथा ज्ञान है वह कम क्यों जानता है ? ऐसी शंका उत्पन्न होती है।

इसका उत्तर—अवधिज्ञान के साथ में अवधि दर्शन की सहायता है, इसलिये ज्यादा जानता देखता है। मनःपर्यय ज्ञान के साथ में दर्शन की सहायता नहीं है, इसलिये कम जानता देखता है।

२ दंसणंतरेहिं (दर्शनान्तर से)—सामान्य ज्ञान को दर्शन कहते हैं। चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन अलग क्यों कहा गया ?

इसका उत्तर—अचक्षु दर्शन सामान्य रूप से देखता है, चक्षुदर्शन विशेष रूप से देखता है।

अथवा—समकित के विषय में शंका उत्पन्न होती है, जैसे—उपशम समकित और क्षायोपशमिक समकित अलग अलग क्यों कही गई ? उत्तर—क्षायोपशमिक समकित में विपाक का उपशम है और मिथ्यात्व के प्रदेशों का उदय है। उपशम समकित में मिथ्यात्व के प्रदेशों का उदय नहीं है।

३ चरित्तंतरेहिं (चारित्रान्तर से)— चारित्र के विषय में शंका उत्पन्न होती है, जैसे— सामायिक चारित्र में सर्व सावद्य का त्याग हो गया फिर छेदोपस्थापनीय चारित्र देने की क्या आवश्यकता है ? उत्तर—प्रथम तीर्थङ्कर के साधु ऋजुजड़ (ऊपर से जड़ यानी मन्द बुद्धि होते हैं किन्तु भीतर से उनका हृदय सरल होता है) होते हैं और अन्तिम तीर्थङ्कर के साधु वक्रजड़ (ऊपर से जड़ यानी मन्द बुद्धि और भीतर हृदय में छल कपट वाले) होते हैं। इसलिये प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्कर के साधुओं को समझाने के लिये छेदोपस्थापनीय चारित्र दिया जाता है। बीच के २२ तीर्थङ्करों के साधु ऋजुप्राज्ञ (प्राज्ञ यानी ऊपर से तीक्ष्ण बुद्धि वाले और ऋजु यानी भीतर से सरल हृदय वाले) होते हैं। इसलिये उनके लिए सामायिक चारित्र ही कहा गया है।

४ लिंगंतरेहिं (लिङ्गान्तर से)—प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्कर के साधु सिर्फ सफेद वस्त्र रखते हैं और बीच के २२ तीर्थङ्करों के साधु पांच ही वर्ण के वस्त्र रखते हैं ? यह भेद क्यों ? उत्तर— प्रथम तीर्थङ्कर के साधु ऋजुजड़ और अन्तिम तीर्थङ्कर के साधु वक्रजड़ होते हैं इसलिए उनके लिए सिर्फ सफेद वस्त्र रखने की ही आज्ञा है। बीच के २२ तीर्थङ्करों के साधु ऋजुप्राज्ञ होते हैं, इसलिए वे पांचों रंग के वस्त्र रख सकते हैं।

५ पवयणंतरेहिं (प्रवचनान्तर से)—एक तीर्थङ्कर के प्रवचन से दूसरे तीर्थङ्कर के प्रवचन में अन्तर पड़ने से शंका उत्पन्न होती है, जैसे—प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्कर के समय में पांच महाव्रत और छठा रात्रिभोजनविरमणव्रत बतलाया गया है और बीच के २२ तीर्थंकरों के समय में चार महाव्रत और पांचमा रात्रिभोजनविरमणव्रत बतलाया गया है ऐसा क्यों ? ऐसी शंका उत्पन्न होवे उसका उत्तर—तीसरे प्रश्न के उत्तर के समान है। चौथे महाव्रत का पांचवें महाव्रत में समावेश किया गया है क्योंकि स्त्री परिग्रह रूप ही है। इस कारण से बीच के २२ तीर्थंकरों के समय चार महाव्रत कहे गये हैं। अलग अलग विचार करने से पांच महाव्रत हो जाते हैं।

६ पावयणंतरेहिं (प्रावचनिकान्तर से) —प्रावचनिक अर्थात् बहुश्रुत पुरुष। एक प्रावचनिक इस तरह की प्रवृत्ति करता है और दूसरा प्रावचनिक दूसरी तरह की प्रवृत्ति करता है। इन दोनों में कौन सी ठीक है ?, ऐसी शंका उत्पन्न हो, उसका उत्तर यह है कि चारित्रमोहनीय का क्षयोपशम भिन्न भिन्न होने से तथा उत्सर्ग अपवाद मार्ग होने से प्रवृत्ति में अन्तर पड़ जाता है किन्तु वही प्रवृत्ति प्रमाण रूप है जो आगम से अविरुद्ध है।

७ कप्पंतरेहिं—(कल्पान्तर से)—एक कल्प से दूसरे कल्प में अन्तर होने से शंका उत्पन्न होवे—जैसे कि—जिन-

कल्पी साधु नग्न रहते हैं और महाकष्टकारी क्रिया करते हैं। स्थविरकल्पी वस्त्र पात्र रखते हैं और अल्प कष्ट वाली क्रिया करते हैं तो यह अल्प कष्टकारी क्रिया कर्म क्षय में कैसे कारण हो सकती है? उत्तर—जिनकल्प और स्थविरकल्प दोनों ही भगवान् की आज्ञा में हैं और दोनों कर्म क्षय के कारण हैं।

८ मग्गंतरेहिं (मार्गान्तर से)—कोई आचार्य दो नमोत्थुणं देते हैं और कोई आचार्य तीन नमोत्थुणं देते हैं। कोई आचार्य अधिक कायोत्सर्ग करते हैं और कोई कम करते हैं। इनमें कौनसा मार्ग ठीक है? ऐसी शंका होवे उसका उत्तर—गीतार्थ जिस समाचारी में प्रवृत्ति करते हैं यदि वह निषिद्ध नहीं है और निष्पाप है तो प्रमाण युक्त है।

९ मयंतरेहिं (मतान्तर से)—एक दूसरे आचार्य के मत में अन्तर पड़ने से शंका उत्पन्न होती है, जैसे कि—आचार्य सिद्धसेन दिवाकर केवलज्ञान और केवलदर्शन को एक साथ मानते हैं और आचार्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण केवलज्ञान और केवलदर्शन को एक साथ नहीं मानते किन्तु भिन्न २ समय में मानते हैं। अब शंका होती है कि इन दोनों मतों में कौन सा मत सचा है? उत्तर—जो मत आगम के अनुसार है वही सत्य है। पन्नवणाजी के पद ३० में इस तरह कहा है—जिस समय जानता है उस समय नहीं देखता जिस समय देखता है उस समय नहीं जानता।

१० भगंतरेहिं (भङ्गान्तर से)—हिंसा सम्बन्धी ४ भांगे होते हैं—

१ द्रव्य से हिंसा, भाव से नहीं।
२ भाव से हिंसा, द्रव्य से नहीं।
३ द्रव्य से भी नहीं, भाव से भी नहीं।
४ द्रव्य से भी हिंसा, भाव से भी हिंसा।

इन भागों में से कोई आचार्य द्विभंगी, कोई त्रिभंगी और कोई चौभंगी मानते हैं। इनमें शंका उत्पन्न होवे उसका उत्तर—ईर्यासमिति से यत्नापूर्वक चलते हुए साधु के पैर नीचे कोई कीड़ी आदि जीव मर जाय तो द्रव्य हिंसा है। विना उपयोग से चले तो भाव हिंसा है।

११—णयंतरेहिं (नयान्तर से)—एक ही वस्तु में नित्य और अनित्य ये दो विरोधी धर्म कैसे रह सकते हैं ? इसका उत्तर–द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से वस्तु नित्य है और पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से वस्तु अनित्य है। भिन्न-भिन्न अपेक्षा से एक ही वस्तु में भिन्न-भिन्न धर्म रह सकते हैं। जैसे—एक ही पुरुष अपने पिता की अपेक्षा से पुत्र है और अपने पुत्र की अपेक्षा से वह पिता है।

१२—णियमंतरेहिं (नियमान्तर से)—जैसे कोई साधु अभिग्रह करता है, नवकारसी पौरिसी आदि पच्चक्खाण करता है। इसमें शंका उत्पन्न होवे कि साधु के तो सर्व सावद्य का

त्याग है फिर उसे अभिग्रह, नवकारसी पौरिसी आदि करने की क्या आवश्यकता है ? इसका उत्तर—साधु विशेष प्रमाद को टालने के लिये अभिग्रह आदि करते हैं।

१३—पमाणंतरेहिं (प्रमाणान्तर से)—शास्त्र में कहा है कि सूर्य समभूमि भाग से आठ सौ योजन ऊपर चलता है। हमारे चक्षु प्रत्यक्ष से तो प्रतिदिन सूर्य भूमि से निकलता हुआ दिखाई देता है। इनमें कौन सच्चा है ? इसका उत्तर—हमारे चक्षु प्रत्यक्ष से सूर्य पृथ्वी से निकलता हुआ दिखाई देता है यह चक्षु प्रत्यक्ष सत्य नहीं है क्योंकि सूर्य पृथ्वी से बहुत दूर है इसलिये हमारा चक्षुभ्रम है। शास्त्र में जो कहा है वह सत्य है।

सेवं भंते ! सेवं भंते !!

(थोकड़ा नं० १३)

श्री भगवतीजी सूत्र के पहले शतक के तीसरे उद्देशे में 'अस्ति नास्ति' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

१—अहो भगवान ! क्या * अस्ति पदार्थ अस्तिपणे परिणमता है और नास्ति पदार्थ नास्तिपणे परिणमता है ? हाँ,

* जो पदार्थ जिस रूप से है उसका उसी रूप में रहना 'अस्तिपना' है और पर रूप से न रहना नास्तिपना है। प्रत्येक वस्तु अपने अपने रूप से सत् (विद्यमान) है और पर रूप से असत् (अविद्यमान) है। जैसे मनुष्य मनुष्य रूप से सर्वकाल में सत् है और मनुष्य अश्व (घोड़े) रूप से सर्वकाल में असत् है। जैसे घट (घड़ा) घट रूप से सत् है किन्तु घट पट (कपड़ा) रूप से असत् है।

गौतम ! अस्ति पदार्थ अस्तिपणे परिणमता है और नास्ति पदार्थ नास्तिपणे परिणमता है ।

२—अहो भगवान ! जो अस्ति पदार्थ अस्तिपणे परिणमता है और नास्ति पदार्थ नास्तिपणे परिणमता है तो क्या प्रयोगसा (प्रयोग से) परिणमता है या विश्रसा (स्वाभाविक रूप से) परिणमता है ? हे गौतम ! प्रयोगसा भी परिणमता है और विश्रसा भी परिणमता है । इसी तरह गमणिज्ज (गमनीय) के भी दो अलावा (आलापक) कह देने चाहिए ।

सेवं भंते ! सेवं भंते !!

(थोकड़ा नं० १४)

सूत्र श्री भगवतीजी के पहले शतक के चौथे उद्देशे में 'मोहनीय कर्म का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

कइ पयडी कह बंधइ, कइहिं व ठाणेहिं बंधइ पयडी ।
कइ वेएइ पयडी, अणुभागो कइविहो कस्स ॥

१—अहो भगवान् ! कर्म कितने हैं ? हे गौतम ! कर्म ८ हैं—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र, अन्तराय * ।

---

* आठ कर्मों का विस्तृत वर्णन श्री पन्नवणासूत्र के थोकड़ा भाग दूसरा तेईसवें कर्म प्रकृति पद के पहले उद्देशा पृष्ठ ३३ से ४८ तक में कहा गया है ।

२—अहो भगवान्! क्या जीव मोहनीय कर्म के उदय से उवट्ठाणे (उपस्थान-चार गति में परिभ्रमण करने की क्रिया) करता है ? हाँ गौतम ! करता है।

३—अहो भगवान्! वीर्य से उपस्थान (चार गति में परिभ्रमण करने की क्रिया) करता है या अवीर्य से करता है ? हे गौतम ! वीर्य से करता है, अवीर्य से नहीं करता।

४—अहो भगवान्! वीर्य के कितने भेद हैं ? हे गौतम ! वीर्य के तीन भेद हैं—बाल वीर्य, पण्डित वीर्य, बाल पण्डित वीर्य।

५—अहो भगवान्! किस वीर्य से उपस्थान करता है ? हे गौतम ! बालवीर्य से उपस्थान करता है, पण्डितवीर्य से और बाल पण्डित वीर्य से उपस्थान नहीं करता है।

६—अहो भगवान्! क्या मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय से जीव अपक्रमण करता है (ऊँचे गुणस्थान से नीचे गुणस्थान मे आता है) ? हाँ, गौतम ! करता है।

७—अहो भगवान्! कौनसे वीर्य से अपक्रमण करता है ? हे गौतम ! बालवीर्य से अपक्रमण करता है, * कदाचित् बाल-पण्डित वीर्य से भी अपक्रमण करता है किन्तु पण्डित वीर्य से अपक्रमण नहीं करता क्योंकि पण्डित वीर्य से जीव नीचे गुण-

* वाचनान्तर मे कहा है कि—बालवीर्य से अपक्रमण करता है, पण्डितवीर्य से और बालपण्डितवीर्य से अपक्रमण नहीं करता है।

स्थान से ऊंचे गुणस्थान जाता है किन्तु ऊँचे गुणस्थान से नीचे गुणस्थान नहीं आता ❀।

जिस तरह मोहनीय कर्म के उदय से दो आलापक (उपस्थान और अपक्रमण) कहे हैं, उसी तरह उपशान्त मोहनीय कर्म के भी दो आलापक कह देने चाहिए, किन्तु उपशान्त

❀ (१) जब दर्शन मोहनीय (मिथ्यात्व मोहनीय) कर्म का उदय होता है तब जीव बाल वीर्य द्वारा उपट्ठाण करता है अर्थात् बालवीर्य के प्रयोग द्वारा जीव संसार परिभ्रमण की क्रिया करता है। आशय यह है कि मिथ्यादृष्टि जीव बाल वीर्य द्वारा मिथ्यात्व को ही पुष्ट करता है। पण्डित वीर्य द्वारा और बालपण्डित वीर्य द्वारा जीव उवट्ठाण (परलोक की क्रिया-संसार परिभ्रमण की क्रिया) नहीं करता है।

(२) जब जीव के मिथ्यात्व मोहनीय का उदय होता है तब बाल वीर्य द्वारा अपक्रमण करता है अर्थात् ऊपर के उत्तम गुणस्थानों से गिर कर नीचे के गुणस्थानों में आता है अर्थात् सर्व विरति संयम से, देशविरति से और समकित से गिर कर मिथ्यात्व में आता है।

प्रश्न—उदय की अपेक्षा—उवट्ठापज्जा और अवक्कमेज्जा में क्या अन्तर है?

उत्तर—जो जीव मिथ्यात्व में रहे हुए हैं और मिथ्यात्व को ही पुष्ट करते हैं अर्थात् चार गति परिभ्रमण की क्रिया करते हैं। यह उदय की अपेक्षा उवट्ठापज्जा है।

जो जीव उत्तम गुणस्थान (चौथा, पांचवां छठा) से गिर कर मिथ्यात्व में आकर चार गति परिभ्रमण की क्रिया करते हैं। यह उदय की अपेक्षा अवक्कमेज्जा है।

मोहनीय कर्म में पण्डित वीर्य से उपस्थान करता है और बाल पण्डित वीर्य से अपक्रमण करता है ❀।

उपशम भाव में संयम की रुचि होती है। संयम लेकर विचरते हुए कदाचित् किसी जीव के मिथ्यात्व मोहनीय उदय में आता है तब अपने आप संयम से भ्रष्ट हो जाता है और मिथ्यात्व की रुचि जगने से मिथ्यात्वी हो जाता है।

❀ (१) जब जीव के मोहनीय कर्म उपशान्त होता है तब पण्डित वीर्य द्वारा उवट्ठाण करता है अर्थात् ऊपर के उत्तम गुणस्थानों में रहा हुआ जीव उन्हीं गुणस्थानों को पुष्ट करता है।

नोट—यहाँ छठे गुणस्थान की अपेक्षा पण्डित वीर्य संभवित है।

(२) जब जीव के मोहनीय कर्म उपशान्त होता है तब बाल पण्डित वीर्य द्वारा अपक्रमण करता है अर्थात् नीचे के गुणस्थानों से ऊपरके गुणस्थानों मे जाता है। मिथ्यात्व से निकल कर समकित में, देशविरति में तथा सर्व विरति सयम में जाता है।

नोट—यहाँ पाचवें गुणस्थान की अपेक्षा बालपण्डितवीर्य सभवित है और छठे गुणस्थान की अपेक्षा पण्डित वीर्य सभवित है।

प्रश्न—उपशम की अपेक्षा उवट्ठाएज्जा और अवक्कम्मेज्जा में क्या अन्तर है?

उत्तर—जो जीव उत्तम गुणस्थानों (चौथा, पांचवां छठा) में रहे हुए हैं और उन्हीं गुणस्थानों की क्रिया करते हैं। यह उपशम की अपेक्षा उवट्ठाएज्जा है।

जो जीव मिथ्यात्व से निकल कर उत्तम गुणस्थान में जाकर पण्डित वीर्य और बाल पण्डित वीर्य की क्रिया करते हैं। यह उपशम की अपेक्षा अवक्कम्मेज्जा है।

जीव ने जो कर्म किये हैं, उनको आत्मप्रदेशों में निश्चय ही वेदता है, अनुभाग और विपाकों में वेदने की भजना है। बांधे हुए कर्मों को भोगे बिना छुटकारा नहीं होता। केवली भगवान् सब जानते हैं कि 'यह जीव तो तपस्या से कर्मों की उदीरणा करके कर्मों को वेदेगा (भोगेगा) और यह जीव कर्म उदय में आने से वेदेगा'।

सेवं भंते ! सेवं भंते !!

(थोकड़ा नं० १५)

श्री भगवतीजी सूत्र के पहले शतक के पांचवें उद्देशे में क्रोधी मानी आदि के भांगों का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

पुढवी ठिई ओगाहण, सरीर संघयणमेव संठाणे।
लेस्सा दिट्ठि णाणे, जोगुवओगे य दस ठाणा।

अर्थ—स्थिति ४, अवगाहना ४, शरीर ५, संघयण ६, संस्थान ६, लेश्या ६, दृष्टि ३, ज्ञान ८, योग ३ उपयोग २। इन दस द्वारों के ४७ बोल होते हैं।

१—अहो भगवान् ! पृथ्वियाँ कितनी हैं ? हे गौतम ! पृथ्वियाँ ७ हैं रत्नप्रभा यावत् तमतमा प्रभा।

२—अहो भगवान् ! सात पृथ्वियों में कितने नरकावासे

हैं ? हे गौतम ! पहली * नारकी में ३० लाख नरकावासा हैं, दूसरी में २५ लाख, तीसरी में १५ लाख, चौथी में १० लाख, पांचवीं में ३ लाख, छठी में पांच कम १ लाख, और सातवीं में ५ नरकावासा हैं।

३—अहो भगवान् ! ‡ असुरकुमार आदि के कितने लाख आवास (रहने के ठिकाने) हैं ? हे गौतम ! असुरकुमार † के ६४ लाख आवास हैं, नागकुमार के ८४ लाख, सुवर्णकुमार के ७२ लाख, वायुकुमार के ६६ लाख, द्वीपकुमार, दिशाकुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमार, स्तनितकुमार और अग्निकुमार इन छह के ७६–७६ लाख आवास हैं।

---

* तीसा य पण्णवीसा, पण्णरस दसेव य सयसहस्सा।
तिण्णेगं पचूणं, पचेव अणुत्तरा णिरया॥

‡ चउसट्ठीअसुराणं, चउरासीई य होइ णागाणं।
बावत्तरि सुवण्णाणं, वाउकुमाराण छण्णउइ॥ १॥
दीव दिसा उदहीणं विज्जुकुमारिंद थणियमग्गीणं।
छण्हं वि जुयलयाणं, छावत्तरिमो सयसहस्सा॥ २॥

† भवनपतियों के भवन (आवास) दक्षिण और उत्तर दिशा में इस प्रकार हैं—

	दक्षिण दिशा में	उत्तर दिशा में
असुरकुमार के	३४ लाख	३० लाख
नागकुमार के	४४ लाख	४० लाख
सुवर्णकुमार के	३८ लाख	३४ लाख

४—अहो भगवान् ! पृथ्वीकाय के कितने आवास हैं ? हे गौतम ! असंख्याता लाख आवास हैं । इसी तरह जाव वाणव्यंतर तक असंख्याता लाख आवास कह देना । ज्योतिषी में असंख्याता लाख विमानावास हैं ।

५—अहो भगवान् ! वैमानिक देवों के कितने विमानावास हैं ? हे गौतम ! पहले ❀ देवलोक में ३२ लाख विमानावास हैं । दूसरे में २८ लाख, तीसरे में १२ लाख, चौथे में ८ लाख, पांचवें में ४ लाख, छठे में ५० हजार, सातवें में ४०

द्वीपकुमार के	४० लाख	३६ लाख
दिशाकुमार के	" "	" "
उदधिकुमार के	" "	" "
विद्युत्कुमार के	" "	" "
स्तनितकुमार के	" "	" "
अग्निकुमार के	" "	" "
वायुकुमार के	५० लाख	४६ लाख
	४०६०००००	३६६०००००

कुल ७७२०००००० भवन हैं ।

❀ बत्तीसट्ठावीसा, बारस अट्ठ चउरो सयसहस्सा ।
पएणा चत्तालीसा छच, सहस्सा सहस्सारे ॥ १ ॥
आणय पाणयकप्पे, चत्तारि सया आरणच्चुए तिरिण ।
सत्त विमाण सयाइं, चउसु वि एएसु कप्पेसु ॥ २ ॥
एक्कारसुत्तरं हेट्ठिमेसु, सत्तुत्तरं सयं च मज्झिमए ।
सयमेगं उवरिमए, पंचेव अणुत्तरविमाणा ॥ ३ ॥

हजार, आठवें में ६ हजार, नवमें दसवें में ४००, ग्यारहवें बारहवें देवलोक में ३०० विमानावास हैं। नवग्रैवेयक की नीचली त्रिक में १११, बीचली त्रिक में १०७ और ऊपरली त्रिक में १०० विमानावास हैं। पांच अनुत्तर विमानों में ५ विमानावास हैं। वैमानिक देवों के कुल ८४६७०२३ विमानावास हैं।

६—अहो भगवान्! स्थिति कितने प्रकार की है? हे गौतम! स्थिति चार प्रकार की है—१ जघन्य स्थिति, २ जघन्य स्थिति से एक समय अधिक यावत् संख्याता समय तक, ३ संख्याता समय से एक समय अधिक यावत् असंख्याता समय अधिक उत्कृष्ट से एक समय कम तक, ४ उत्कृष्ट स्थिति।

७—अहो भगवान्! अवगाहना के कितने भेद हैं। हे गौतम! चार भेद हैं—१ जघन्य अवगाहना, २ जघन्य अवगाहना से एक आकाश प्रदेश अधिक यावत् संख्याता आकाश प्रदेश तक, ३ संख्याता आकाश प्रदेशों से एक आकाश प्रदेश अधिक, उत्कृष्ट से एक आकाश प्रदेश कम तक, ४ उत्कृष्ट अवगाहना।

८—अहो भगवान! शरीर, संहनन आदि के कितने भेद हैं? हे गौतम! शरीर के ५ भेद हैं—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण। संहनन के ६ भेद हैं वज्रऋषभनाराच, ऋषभ नाराच, नाराच अर्द्ध नाराच, कीलिका, सेवार्त (छेवटिया)

संघयण। संस्थान के ६ भेद हैं—समचौरस (समचतुरस्र) निगोह परिमंडल न्यग्रोधपरिमंडल, सादि, वामन, कुब्ज, हुण्टक। लेश्या के ६ भेद हैं—कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म, शुक्ल लेश्या। दृष्टि के ३ भेद हैं—समदृष्टि, मिथ्यादृष्टि, मिश्रदृष्टि। ज्ञान के ५ भेद—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान। अज्ञान के ३ भेद—मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, विभंगज्ञान। योग के ३ भेद—मनयोग, वचनयोग, काययोग। उपयोग के २ भेद—साकारवउता (साकारोपयोग) अणाकार वउता (अनाकारोपयोग)। ये सब ४७ बोल हैं—

समुच्चय नारकी में बोल पावे २६—(स्थिति के ४, अवगाहना के ४, शरीर ३, संठाण (संस्थान) १, लेश्या ३, दृष्टि ३, ज्ञान ३, अज्ञान ३, योग ३, उपयोग २)। पहली नारकी में बोल पावे २७ (समुच्चय में २६ कहे उनमें से २ लेश्या कम कहना)। पहली नारकी के ३० लाख नरकावासों में बोल पावे २७। इनमें से चार बोलों में (स्थिति का दूसरा भेद, अवगाहना का पहला भेद और दूसरा भेद और मिश्रदृष्टि में) भांगा पावे ८० (असंयोगी ८, द्विसंयोगी २४, त्रिसंयोगी ३२, चार संयोगी १६)। बाकी २३ बोलों में भांगा पावे २७-२७ (असंयोगी १, द्विसंयोगी ६, त्रिसंयोगी १२, चारसंयोगी ८)। अशाश्वत ठिकाणे (स्थान) में भांगा पावे ८० और शाश्वत ठिकाणे में भांगा पावे २७।

दूसरी नारकी के २५ लाख नरकावासों में बोल पावे २७ (पहली नारकी की तरह कह देना)।

तीसरी नारकी के १५ लाख नरकावासों में और पांचवीं नारकी के ३ लाख नरकावासों में बोल पावे २८-२८ (ऊपर २७ कहे उनमें एक लेश्या बढ़ी)। इनमें से चार बोलों में भांगा पावे ८०-८०। शेष २४ बोलों में भांगा पावे २७-२७ (पहली नारकी की तरह कह देना)।

चौथी नारकी के १० लाख नरकावासों में, छठी नारकी के पांच कम एक लाख नरकावासों में और सातवीं नारकी के ५ नरकावासों में बोल पावे २७-२७ (पहली नारकी की तरह कह देना)।

भवनपति और वाणव्यन्तर देवों में बोल पावे ३० (पहले जो २७ कहे हैं, उनमें ३ लेश्या और बढ़ी)। इनमें से चार बोलों में भांगा पावे ८०-८०। बाकी २६ बोलों में भांगा पावे २७-२७ (पहली नारकी की तरह कह देना किन्तु इतनी विशेषता है कि नारकी में क्रोधी, मानी, मायी, लोभी कहे हैं किन्तु यहाँ पर लोभी, मायी, मानी, क्रोधी इस तरह उल्टा कहना, जैसे कि—'सव्वे वि ताव हुज्जा लोभी' इसी तरह बाकी २६ भांगे नारकी से उल्टे कह देना)।

ज्योतिषी देवों में और पहले देवलोक से बारहवें देवलोक तक वैमानिक देवों में बोल पावे २७-२७ (ऊपर जो ३० बोल

कहे हैं उनमें से ३ लेश्या कम हुई)। इनमें से ४ बोलों में भांगा पावे ८०-८० । बाकी २३ बोलों में भांगा पावे २७-२७ (भवनपति की तरह कह देना)।

नवग्रैवेयक में बोल पावे २६ (ऊपर जो २७ कहे हैं उनमें से एक मिश्रदृष्टि कम हुई)। इनमें से ३ बोलों में भांगा पावे ८०-८० । बाकी २३ बोलों में भांगा पावे २७-२७ (भवनपति की तरह कह देना)।

पांच अनुत्तर विमान में बोल पावे २२-२२ (ऊपर २६ कहे हैं उनमें से ३ अज्ञान और एक मिथ्यादृष्टि ये ४ बोल कम हुए)। ३ बोलों में भांगा पावे ८०-८० । बाकी १६ बोलों में भांगा पावे २७-२७ (भवनपति की तरह कह देना)।

पृथ्वी, पानी, वनस्पति में बोल पावे २३-२३ (स्थिति के ४, अवगाहना के ४, शरीर ३, संघयण (संहनन) १, संठाण (संस्थान) १, लेश्या ४, दृष्टि १, अज्ञान २, योग १, उपयोग २,=२३)। इन में से तेजोलेश्या में भांगा पावे ८० (नारकी की तरह कह देना)। बाकी २२ बोलों में भांगे नहीं पावे, अभंग।

तेउकाय में बोल पावे २२ (ऊपर २३ कहे उनमें से तेजोलेश्या कम हुई)। वायुकाय में बोल पावे २३ (तेजोलेश्या कम हुई, वैक्रिय शरीर बढ़ा)। भांगे नहीं, अभंग।

तीन विकलेन्द्रिय में बोल पावे २६-२६ (तेउकाय में २२ कहे हैं उनमें १ समदृष्टि, २ ज्ञान और १ वचन योग ये ४ बढ़

गये)। इन में से ६ बोलों में (समदृष्टि १, ज्ञान २, स्थिति का दूसरा बोल, अवगाहना का पहला और दूसरा बोल=६) भांगा पावे ८०-८० (नारकी की तरह कह देना)। बाकी २० बोलों में भांगे नहीं पावे, अभंग।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय में बोल पावे ४४ (४७ बोलों में से शरीर १, ज्ञान दो ये तीन बोल कम हुए)। इनमें से ४ बोलों में (नारकी में कहे उनमें) भांगा पावे ८०-८०। बाकी ४० बोलों में भांगे नहीं पावे, अभंग।

मनुष्य में बोल पावे ४७। इनमें से ६ बोलों में (स्थिति का पहला दूसरा बोल, अवगाहना का पहला दूसरा बोल, आहारक शरीर, मिश्रदृष्टि=६) में भांगा पावे ८०-८० (नारकी की तरह कह देना)। बाकी ४१ बोलों में भांगे नहीं पावे, अभंग।

अशाश्वत ठिकाणे में ८० भांगे पाये जाते हैं वे इस प्रकार हैं—

असंयोगी भांगे ८

१ क्रोधी एक
२ मानी एक
३ मायी एक
४ लोभी एक
५ क्रोधी बहुत
६ मानी बहुत

७ मायी बहुत
८ लोभी बहुत

द्विक संयोगी भांगा २४

१ क्रोधी एक, मानी एक
२ क्रोधी एक, मानी बहुत
३ क्रोधी बहुत, मानी एक
४ क्रोधी बहुत, मानी बहुत
५ क्रोधी एक, मायी एक
६ क्रोधी एक, मायी बहुत
७ क्रोधी बहुत, मायी एक
८ क्रोधी बहुत, मायी बहुत
९ क्रोधी एक, लोभी एक
१० क्रोधी एक, लोभी बहुत
११ क्रोधी बहुत, लोभी एक
१२ क्रोधी बहुत, लोभी बहुत
१३ मानी एक, मायी एक
१४ मानी एक, मायी बहुत
१५ मानी बहुत, मायी एक
१६ मानी बहुत, मायी बहुत
१७ मानी एक, लोभी एक
१८ मानी एक, लोभी बहुत

१६ मानी बहुत, लोमी एक
२० मानी बहुत, लोमी बहुत
२१ मायी एक, लोमी एक
२२ मायी एक, लोमी बहुत
२३ मायी बहुत, लोमी एक
२४ मायी बहुत, लोमी बहुत

त्रिकसंयोगी भांगा ३२

१ क्रोधी एक, मानी एक, मायी एक
२ क्रोधी एक, मानी एक, मायी बहुत
३ क्रोधी एक, मानी बहुत, मायी एक
४ क्रोधी एक, मानी बहुत, मायी बहुत
५ क्रोधी बहुत, मानी एक, मायी एक
६ क्रोधो बहुत, मानी एक, मायी बहुत
७ क्रोधी बहुत, मानी बहुत, मायी एक
८ क्रोधो बहुत, मानी बहुत, मायी बहुत
६ क्रोधी एक, मानी एक, लोमी एक
१० क्रोधी एक, मानी एक, लोमी बहुत
११ क्रोधी एक, मानी बहुत, लोमी एक
१२ क्रोधी एक, मानी बहुत, लोमी बहुत
१३ क्रोधी बहुत, मानी एक, लोमी एक
१४ क्रोधी बहुत, मानी एक, लोमी बहुत

१५ क्रोधी बहुत, मानी बहुत, लोभी एक
१६ क्रोधी बहुत, मानी बहुत, लोभी बहुत
१७ क्रोधी एक, मायी एक, लोभी एक
१८ क्रोधी एक, मायी एक, लोभी बहुत
१६ क्रोधी एक, मायी बहुत, लोभी एक
२० क्रोधी एक, मायी बहुत, लोभी बहुत
२१ क्रोधी बहुत, मायी एक, लोभी एक
२२ क्रोधी बहुत, मायी एक, लोभी बहुत
२३ क्रोधी बहुत, मायी बहुत, लोभी एक
२४ क्रोधी बहुत, मायी बहुत, लोभी बहुत
२५ मानी एक, मायी एक, लोभी एक
२६ मानी एक, मायी एक, लोभी बहुत
२७ मानी एक, मायी बहुत, लोभी एक
२८ मानी एक, मायी बहुत, लोभी बहुत
२६ मानी बहुत, मायी एक, लोभी एक
३० मानी बहुत, मायी एक, लोभी बहुत
३१ मानी बहुत, मायी बहुत, लोभी एक
३२ मानी बहुत, मायी बहुत, लोभी बहुत

चार संयोगी भांगा १६

१ क्रोधी एक, मानी एक, मायी एक, लोभी एक
२ क्रोधी एक, मानी एक, मायी एक, लोभी बहुत

३ क्रोधी एक, मानी एक, मायी बहुत, लोभी एक
४ क्रोधी एक, मानी एक, मायी बहुत, लोभी बहुत
५ क्रोधी एक, मानी बहुत, मायी एक, लोभी एक
६ क्रोधी एक, मानी बहुत, मायी एक, लोभी बहुत
७ क्रोधी एक, मानी बहुत, मायी बहुत, लोभी एक
८ क्रोधी एक, मानी बहुत, मायी बहुत, लोभी बहुत
९ क्रोधी बहुत, मानी एक, मायी एक, लोभी एक
१० क्रोधी बहुत, मानी एक, मायी एक, लोभी बहुत
११ क्रोधी बहुत, मानी एक, मायी बहुत, लोभी एक
१२ क्रोधी बहुत, मानी एक, मायी बहुत, लोभी बहुत
१३ क्रोधी बहुत, मानी बहुत, मायी एक लोभी एक
१४ क्रोधी बहुत, मानी बहुत, मायी एक, लोभी बहुत
१५ क्रोधी बहुत, मानी बहुत, मायी बहुत, लोभी एक
१६ क्रोधी बहुत, मानी बहुत, मायी बहुत, लोभी बहुत

द्विक संयोगी भांगों के आंक—११, १३, ३१, ३३।
त्रिक संयोगी भागों के आंक—१११, ११३, १३१, १३३, ३११, ३१३ ३३१, ३३३।
चार सयोगी भागों के आक—११११, १११३, ११३१, ११३३, १३११, १३१३, १३३१, १३३३, ३१११, ३११३, ३१३१, ३१३३, ३३११, ३३१३, ३३३१, ३३३३।
जहाँ १ है वहाँ एक कहना चाहिए और जहाँ ३ है वहाँ 'बहुत' कहना चाहिए। इस प्रकार आंकों पर ध्यान लगाने से भांगे सरलता से बोले जा सकते हैं।

शाश्वत बोलों में २७ भांगे होते हैं जिनमें असंयोगी १, द्विक संयोगी ६, त्रिक संयोगी १२, चार संयोगी ८ भांगे होते हैं=२७।

असंयोगी भांगा एक—

१ सव्वे वि ताव होज्जा कोहोवउत्ता (सभी क्रोधी)।

द्विकसंयोगी भांगा ६

१ क्रोधी बहुत, मानी एक
२ क्रोधी बहुत, मानी बहुत
३ क्रोधी बहुत, मायी एक
४ क्रोधी बहुत, मायी बहुत
५ क्रोधी बहुत, लोभी एक
६ क्रोधी बहुत, लोभी बहुत

त्रिक संयोगी भांगा १२

१ क्रोधी बहुत, मानी एक, मायी एक
२ क्रोधी बहुत, मानी एक, मायी बहुत
३ क्रोधी बहुत, मानी बहुत, मायी एक
४ क्रोधी बहुत, मानी बहुत मायी बहुत
५ क्रोधी बहुत, मानी एक लोभी एक
६ क्रोधी बहुत, मानी एक, लोभी बहुत
७ क्रोधी बहुत, मानी बहुत, लोभी एक
८ क्रोधी बहुत मानी बहुत, लोभी बहुत

९ क्रोधी बहुत, मायी एक, लोमी एक
१० क्रोधी बहुत, मायी एक, लोमी बहुत
११ क्रोधी बहुत, मायी बहुत, लोमी एक
१२ क्रोधी बहुत, मायी बहुत, लोमी बहुत
चार संयोगी भांगा ८
१ क्रोधी बहुत, मानी एक, मायी एक, लोमी एक
२ क्रोधी बहुत, मानी एक, मायी एक, लोमी बहुत
३ क्रोधी बहुत, मानी एक, मायी बहुत, लोमी बहुत
४ क्रोधी बहुत, मानी एक, मायी बहुत, लोमी बहुत
५ क्रोधी बहुत, मानी बहुत, मायी एक, लोमी एक
६ क्रोधी बहुत, मानी बहुत, मायी एक, लोमी बहुत
७ क्रोधी बहुत, मानी बहुत, मायी बहुत, लोमी एक
८ क्रोधी बहुत, मानी बहुत, मायी बहुत, लोमी बहुत।

देवता में २७ भांगा इस तरह कहना चाहिए—असंयोगी भांगा १—

१ सव्वे वि ताव होज्जा लोमोवउत्ता (सभी लोमी)।

द्विक संयोगी भांगा ६
१ लोमी बहुत, मायी एक
२ लोमी बहुत, मायी बहुत
३ लोमी बहुत, मानी एक

द्विक सयोगी मार्गों के आंक – ३१, ३३।
त्रिक सयोगी मार्गों के आंक—३११ ३१३, ३३१, ३३३।

४ लोभी बहुत मानी बहुत
५ लोभी बहुत, क्रोधी एक
६ लोभी बहुत, क्रोधी बहुत

त्रिक संयोगी भांगा १२

१ लोभी बहुत, मायी एक, मानी एक
२ लोभी बहुत, मायी एक, मानी बहुत
३ लोभी बहुत, मायी बहुत, मानी एक
४ लोभी बहुत, मायी बहुत, मानी बहुत
५ लोभी बहुत, मायी एक, क्रोधी एक
६ लोभी बहुत, मायी एक, क्रोधी बहुत
७ लोभी बहुत, मायी बहुत, क्रोधी एक
८ लोभी बहुत, मायी बहुत, क्रोधी बहुत
९ लोभी बहुत, मानी एक, क्रोधी एक
१० लोभी बहुत, मानी एक, क्रोधी बहुत
११ लोभी बहुत, मानी बहुत, क्रोधी एक
१२ लोभी बहुत, मानी बहुत, क्रोधी बहुत

चार संयोगी भांगा ८

१ लोभी बहुत, मायी एक, मानी एक, क्रोधी एक
२ लोभी बहुत, मायी एक, मानी एक, क्रोधी बहुत

चार संयोगी भांगों के अंक—३१११, ३११३, ३१३१, ३१३३, ३३११, ३३१३, ३३३१ ३३३३ ।

इन अंकों पर ध्यान देने से भांगे आसानी से बोले जा सकते हैं ।

३ लोभी बहुत, मायी एक, मानी बहुत, क्रोधी एक
४ लोभी बहुत, मायी एक, मानी बहुत, क्रोधी बहुत
५ लोभी बहुत, मायी बहुत, मानी एक, क्रोधी एक
६ लोभी बहुत, मायी बहुत, मानी एक, क्रोधी बहुत
७ लोभी बहुत, मायी बहुत, मानी बहुत, क्रोधी एक
८ लोभी बहुत, मायी बहुत, मानी बहुत, क्रोधी बहुत

सेवं भंते ! सेवं भंते !!

(थोकड़ा नं० १६)

श्री भगवतीजी सूत्र के पहले शतक के छठे उद्देशे में 'रोहा अणगार' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

लोए जीवा भवि सिद्धि, सिद्धा श्रंडए कुक्कुडी।
लोयंते अलोयंते, सव्वे अणाणुपुव्वीयं ॥ १ ॥
उवास वाय घण उदही, पुढवी दीवा य सागर वासा।
णेरइयाई अत्थियसमया, कम्माइं लेस्साओ ॥ २ ॥
दिट्ठि दंसणणाणे, सण्णा सरीरा य जोगुवओगे।
दव्व पएसा पज्जव श्रद्धा, किं पुव्विं लोयंते ॥ ३ ॥

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के अन्तेवासी (शिष्य) रोहा नामक अनगार थे। वे प्रकृति के भद्रिक, कोमल, विनीत और शान्त थे। उनके क्रोध, मान, माया, लोभ स्वभाव से ही पतले थे। वे निरभिमानी, गुरु की आज्ञा में रहने वाले, किसी

को संताप न पहुँचाने वाले, गुरु भक्त थे। गोडों को ऊंचा और मस्तक को थोड़ा नीचा नमा कर, ध्यान रूपी कोठे में प्रविष्ट होकर अपनी आत्मा को तप संयम से भावित करते हुए विचरते थे। एक समय उनके मन में शंका उत्पन्न हुई तब वे भगवान् महावीर स्वामी के पास आकर विनयपूर्वक पूछने लगे—

१—अहो भगवान्! क्या पहले लोक और पीछे अलोक है अथवा पहले अलोक और पीछे लोक है? हे रोहा! लोक और अलोक पहले भी है और पीछे भी है। ये दोनों शाश्वत भाव हैं, यह अनानुपूर्वी है (यह पहले और यह पीछे ऐसा क्रम नहीं है)।

२ से ५—अहो भगवान्! क्या पहले जीव और पीछे अजीव है अथवा पहले अजीव और पीछे जीव है? हे रोहा! जिस तरह लोक अलोक का कहा, उसी तरह जीव अजीव का भी कह देना। इसी तरह भवसिद्धिक अभवसिद्धिक, सिद्धि और असिद्धि (संसार), सिद्ध और असिद्ध (संसारी) का भी कह देना। ये शाश्वत भाव हैं, अनानुपूर्वी हैं।

६—अहो भगवान्! क्या पहले अण्डा और पीछे कूकड़ी है अथवा पहले कूकड़ी और पीछे अण्डा है? हे रोहा! यह अण्डा कहां से हुआ? अहो भगवान्! अण्डा कूकड़ी से हुआ। हे रोहा! कूकड़ी कहां से हुई? अहो भगवान्! कूकड़ी अण्डे

से हुई। हे रोहा ! इस तरह कूकड़ी और अण्डा पहले भी है और पीछे भी है। ये शाश्वतभाव हैं, अनानुपूर्वी हैं।

७—अहो भगवान् ! क्या पहले लोकान्त और पीछे अलोकान्त है अथवा पहले अलोकान्त और पीछे लोकान्त है? हे रोहा ! लोकान्त और अलोकान्त ये दोनों शाश्वतभाव हैं, अनानुपूर्वी हैं।

८—अहो भगवान् ! क्या पहले लोकान्त और पीछे सातवीं नारकी का आकाशान्त है ? अथवा पहले सातवीं नारकी का आकाशान्त है और पीछे लोकान्त है ? हे रोहा ! ये दोनों ही शाश्वतभाव हैं, अनानुपूर्वी हैं।

इसी तरह (९) लोकान्त और सातवीं नारकी की तनुवात, (१०) लोकान्त और सातवीं नारकी की घनवात, (११) लोकान्त और सातवीं नारकी का घनोदधि, (१२) लोकान्त और सातवीं नारकी, ये आठवें प्रश्न की तरह कह देना, ये शाश्वतभाव हैं, अनानुपूर्वी हैं।

इसी तरह लोकान्त और छठी नारकी का आकाशान्त, छठी नारकी की तनुवात, छठी नारकी की घनवात, छठी नारकी का घनोदधि और छठी नारकी ये ५ प्रश्न आठवें प्रश्न की तरह कह देना। इसी तरह पहली नारकी तक एक एक नारकी के पांच पांच प्रश्न लोकान्त से कह देना। इस प्रकार सात नारकी के ३५ प्रश्न हुए। (३६) द्वीप, (३७) सागर,

(३८) वर्ष-क्षेत्र, (३९) नैरयिक आदि जीव, (४०) अस्ति-काय, (४१) समय, (४२) कर्म, (४३) लेश्या, (४४) दृष्टि, (४५) दर्शन, (४६) ज्ञान, (४७) संज्ञा, (४८) शरीर, (४९) योग, (५०) उपयोग, (५१) द्रव्य, (५२) प्रदेश, (५३) पर्याय, (५४) अतीतकाल, (५५) अनागत काल, (५६) सर्वकाल, इन सब का प्रश्न लोकान्त से कह देना। ये सब शाश्वत भाव हैं, अनानुपूर्वी हैं। इसी तरह सातवीं नारकी के आकाशान्त से ५५ बोल कह देना। इस प्रकार अनुक्रम से ऊपर का एक एक बोल छोड़ते हुए आगे आगे के बोल कह देना।

सेवं भंते ! सेवं भंते !!

(थोकड़ा नं० १७)

श्री भगवतीजी सूत्र के पहले शतक के छठे उद्देशे में 'लोक स्थिति' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

१—अहो भगवान्! लोक की स्थिति कितने प्रकार की है? हे गौतम! आठ प्रकार की है—आकाश के आधार तनुवात, (२) तनुवात के आधार घनवात, (३) घनवात के आधार घनोदधि, (४) घनोदधि के आधार पृथ्वी, (५) पृथ्वी के आधार त्रस स्थावर जीव, (६) जीवों के आधार

अजीव, (७) जीव कर्म के आधार, (८) अजीव जीवों द्वारा संगृहीत (बद्ध) हैं और जीव अजीवों (कर्मों) द्वारा संगृहीत (बद्ध) हैं।

लोक की स्थिति को समझाने के लिए मशक का दृष्टान्त दिया जाता है-जैसे-चमड़े की मशक को हवा से फुला कर उसका मुँह बन्द कर दिया जाय। इसके बाद मशक के मध्य भाग में एक डोरा बांधकर ऊपर का मुँह खोल दिया जाय और उसकी हवा निकाल दी जाय। ऊपर के खाली भाग में पानी भर कर वापिस मुँह बन्द कर दिया जाय और बीच में बंधा हुआ डोरा खोल दिया जाय तो हे गौतम! क्या वह पानी हवा के आधार से ऊपर के भाग में रहता है? हाँ, भगवान्! रहता है। हे गौतम! इसी तरह लोक की स्थिति है यावत् जीव कर्मों द्वारा संगृहीत हैं।

दूसरा दृष्टान्त—जैसे हवा से फूली हुई मशक को कमर पर बांध कर कोई पुरुष अथाह पानी में प्रवेश करे तो हे गौतम! क्या वह पानी की सतह (ऊपर के भाग) पर रहता है! हाँ, भगवान्! वह पानी की सतह पर रहता है, डूबता नहीं। हे गौतम! इसी तरह लोक की स्थिति है। आकाश और वायु आदि आधाराधेय भाव से रहे हुए हैं।

३—अहो भगवान्! क्या जीव और पुद्गल परस्पर

संवद्ध यावत् *प्रतिवद्ध हैं ? हाँ, गौतम ! जीव और पुद्गल परस्पर संवद्ध यावत् प्रतिवद्ध हैं। जैसे—कोई पुरुष किसी जल से परिपूर्ण तालाव में छिद्रों वाली एक नाव डाले तो उन छिद्रों से पानी आते आते वह नाव पानी में डूब जाती है। फिर जिस तरह नाव और तालाव का पानी एकमेक होकर रहता है, उसी तरह जीव और पुद्गल परस्पर एकमेक होकर संवद्ध यावत् प्रतिवद्ध हैं।

४—अहो भगवान् ! क्या सूक्ष्म अप्काय सदा काल गिरती है (वरसती है) ? हाँ, गौतम ! सूक्ष्म अप्काय सदा काल गिरती है।

५ – अहो भगवान् ! सूक्ष्म अप्काय कहाँ गिरती है ? हे गौतम ! सूक्ष्म अप्काय ऊपर नीचे तिर्च्छी सब जगह गिरती है।

६—अहो भगवान् ! क्या सूक्ष्म अप्काय बादर अप्काय की तरह परस्पर समायुक्त (इकट्ठी) होकर बहुत काल तक ठहर सकती है ? हे गौतम ! 'णो इणट्ठे समट्ठे' सूक्ष्म अप्काय समायुक्त होकर बहुत काल तक नहीं ठहर सकती है किन्तु वह जल्दी ही नष्ट हो जाती है।

सेवं भंते ! सेवं भंते !!

---

* इसका पाठ यह है -

अण्णमण्णबद्धा, अण्णमण्णपुट्ठा, अण्णमण्णओगाढा, अण्णमण्णसिणेहपडिबद्धा, अण्णमण्ण घडत्ताए चिट्ठंति।

अर्थ—परस्परबद्ध, परस्परस्पृष्ट, परस्परअवगाढ, परस्पर स्नेह प्रतिबद्ध परस्पर घट्ट (परस्पर समुदाय रूप) रहते हैं।

(थोकड़ा नं० १८)

श्री भगवतीजी सूत्र के पहले शतक के सातवें उद्देशे में '१६ दण्डक' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

१—अहो भगवान् ! नरक में उत्पन्न होता हुआ नैरयिक क्या देश से देश उत्पन्न होता है (जीव अपने एक अवयव से नैरयिक का एक अवयव उत्पन्न होता है ?) या देश से सर्व उत्पन्न होता है ? या सर्व से देश उत्पन्न होता है ? या सर्व से सर्व उत्पन्न होता है ? हे गौतम ! देश से देश उत्पन्न नहीं होता, देश से सर्व उत्पन्न नहीं होता, सर्व से देश उत्पन्न नहीं होता किन्तु सर्व से सर्व उत्पन्न होता है । इसी तरह वैमानिक तक २४ ही दण्डक में कह देना ।

२—अहो भगवान् ! नरक में उत्पन्न होता हुआ नैरयिक क्या देश से देश का आहार लेता है ? (आत्मा के एक भाग से आहार का एक भाग ग्रहण करता है ?), या देश से सर्व आहार लेता है, ? या सर्व से देश आहार लेता है ? या सर्व से सर्व आहार लेता है ? हे गौतम ! देश से देश आहार नहीं लेता, देश से सर्व आहार नहीं लेता, किन्तु सर्व से देश आहार लेता है अथवा सर्व से सर्व आहार लेता है । इसी तरह २४ दण्डक में कह देना ।

३—अहो भगवान् ! नरक से उद्वर्तता (निकलता) हुआ नैरयिक क्या देश से देश उद्‌वर्तता है ? इत्यादि प्रश्न। हे गौतम ! जिस तरह उत्पन्न होने का कहा उसी तरह उद्वर्तन (नरक से निकलना) का भी कह देना। इसी तरह २४ दण्डक में कह देना।

४—अहो भगवान् ! नरक से उद्वर्तता हुआ नैरयिक क्या देश से देश आहार लेता है ? इत्यादि प्रश्न। हे गौतम ! जिस तरह उत्पन्न होने के समय आहार लेने का कहा उसी तरह यहाँ भी कह देना अर्थात् सर्व से देश आहार लेता है अथवा सर्व से सर्व आहार लेता है।

५—अहो भगवान् ! नरक में उत्पन्न हुआ नैरयिक क्या देश से देश उत्पन्न हुआ है ? इत्यादि प्रश्न। हे गौतम ! यह भी पहले की तरह कह देना अर्थात् सर्व से सर्व उत्पन्न हुआ है। ६ सर्व से देश आहार लेता है अथवा सर्व से सर्व आहार लेता है।

७-८—जिस तरह 'उत्पन्न हुआ' का कहा उसी तरह 'उद्व‌र्तन हुआ' भी कह देना।

(१) उत्पन्न होता हुआ, (२) उत्पन्न होता हुआ आहार लेता है, (३) उद्वर्तता हुआ, (४) उद्वर्तता हुआ आहार लेता है, (५) उत्पन्न हुआ, (६) उत्पन्न हुआ आहार लेता है, (७) उद्वर्ता (निकला) हुआ, (८) उद्‌वर्ता हुआ आहार लेता है। ये ८ दंडक (भांगा—आलापक) हुए।

६—अहो भगवान्! नरक में उत्पन्न होता हुआ नैरयिक क्या आधे भाग से आधा भाग (अद्धेणं अद्धे) उत्पन्न होता है? या आधे भाग से सर्व भाग (अद्धेणं सव्वे) उत्पन्न होता है? इत्यादि प्रश्न। हे गौतम! जिस तरह पहले ८ भांगे कहे हैं उसी तरह यहाँ 'देश के स्थान में अद्धेणं अद्धे (आधे भाग से आधा भाग)' के भी ८ भांगे कह देना।

ये सब १६ भांगे (आलापक) हुए। २४ दण्डक के साथ गिनने से ३८४ भांगे हुए।

सेवं भंते! सेवं भंते!!

(थोकड़ा नं० १६)

श्री भगवतीजी सूत्र के पहले शतक के सातवें उद्देशे में 'गर्भ' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

१—अहो भगवान्! महान् ऋद्धि, कान्ति, ज्योति, बल, सुख और महानुभाव वाला देव अपना च्यवन काल (मृत्यु-समय) नजदीक जान कर क्या लज्जित होता है? अरति करता है, और थोड़े समय तक आहार भी नहीं लेता, फिर पीछे क्षुधा (भूख) सहन नहीं होने से आहार करता है? शेष आयु पूरी होने पर मनुष्य गति या तिर्यञ्च गति में उत्पन्न होता है? हाँ गौतम! देवता अपना च्यवन काल नजदीक जान कर पूर्वोक्त प्रकार से चिन्ता करता है कि अब मुझे इन देवता सम्बन्धी कामभोगों को छोड़ कर मनुष्यादि की अशुचि पदार्थ वाली योनि

में उत्पन्न होना पड़ेगा और वहाँ वीर्य रुधिर का आहार लेना पड़ेगा। ऐसा सोच कर वह लज्जित होता है, घृणा करता है, अरति करता है, फिर आयु क्षय होने पर मनुष्य गति या तिर्यञ्च गति में उत्पन्न होता है।

२—अहो भगवान्! गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव क्या इन्द्रियसहित उत्पन्न होता है या इन्द्रिय रहित उत्पन्न होता है? हे गौतम! द्रव्येन्द्रियों (कान, आंख, नाक, जीभ और स्पर्श) की अपेक्षा इन्द्रिय रहित उत्पन्न होता है क्योंकि द्रव्येन्द्रियाँ शरीर से सम्बन्ध रखती हैं और भावेन्द्रियों की अपेक्षा इन्द्रियां सहित उत्पन्न होता है।

३—अहो भगवान्! गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव क्या सशरीरी (शरीरसहित) उत्पन्न होता है या अशरीरी (शरीर रहित) उत्पन्न होता है? हे गौतम! औदारिक, वैक्रिय, आहारक इन तीन शरीरों की अपेक्षा शरीर रहित उत्पन्न होता है क्योंकि ये तीनों शरीर जीव उत्पन्न होने के बाद उत्पन्न होते हैं। तैजसशरीर और कार्मण शरीर की अपेक्षा शरीरसहित उत्पन्न होता है क्योंकि ये दोनों शरीर परभव में जीव के साथ रहते हैं, इनका जीव के साथ अनादि सम्बन्ध है।

४—अहो भगवान्! गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव सर्व प्रथम क्या आहार लेता है? हे गौतम! माता के रुधिर और पिता के वीर्य का सर्व प्रथम आहार लेता है। फिर माता

जैसा आहार करती है उसका एक देश (भाग) आहार गर्भ में रहा हुआ जीव भी करता है, क्योंकि माता की नाड़ी का गर्भस्थ जीव की नाड़ी से सम्बन्ध है।

५—अहो भगवान्! क्या गर्भ में रहे हुए जीव के मल-मूत्र, श्लेष्म (बलगम), नाक का मैल, वमन और पित्त होते हैं ? हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे (गर्भ में रहे हुए जीव के मलमूत्र श्लेष्म, नाक का मैल, वमन और पित्त नहीं होते हैं)। गर्भस्थ जीव जो आहार करता है वह श्रोत्रेन्द्रिय चक्षुइन्द्रिय घ्राणेन्द्रिय रसेन्द्रिय स्पर्शेन्द्रियपणे तथा हाड मज्जा (हाड की मींजी) केश नखपणे परिणमता है। क्योंकि गर्भस्थ जीव कवलाहार नहीं करता है, इसलिए उसके मलमूत्रादि नहीं होते हैं। वह सर्व आहार करता है, सर्व परिणमाता है, सर्व उच्छ्वास निःश्वास लेता है यावत् बारबार उच्छ्वास निःश्वास लेता है।

६—अहो भगवान्! जीव के माता के कितने अंग हैं और पिता के कितने अंग हैं ? हे गौतम ! १ मांस, २ रुधिर, (लोही) और ३ मस्तक, ये तीन अङ्ग माता के हैं और १ हाड, २ मज्जा (हाड की मींजी) और ३ केश दाढ़ी रोम नख, ये तीन अङ्ग पिता के हैं।

७ – अहो भगवान्! माता पिता का अंश (प्रथम समय का लिया हुआ आहार) सन्तान के शरीर में कितने काल तक रहता है ? हे गौतम ! जब तक जीव का भवधारणीय शरीर

रहता है तब तक माता पिता का अंश रहता है, परन्तु समय समय पर वह क्षीण होता जाता है यावत् आयुष्य समाप्त होने तक माता पिता का कुछ न कुछ अंश रहता ही है। इसलिए इस शरीर पर माता पिता का बहुत बड़ा उपकार है, इसी से यह जीवित है, इसलिए माता पिता के उपकार को कभी नहीं भूलना चाहिए।

८—अहो भगवान्! गर्भ में मरा हुआ जीव क्या नरक में उत्पन्न हो सकता है? हाँ गौतम! कोई जीव नरक में उत्पन्न होता है और कोई नहीं होता।

९—अहो भगवान्! गर्भ में मरा हुआ जीव किस कारण से नरक में जाता है? हे गौतम! गर्भ में मरा हुआ संज्ञी (सन्नी) पंचेन्द्रिय, पूर्ण पर्याप्ति वाला वीर्यलब्धि वैक्रियलब्धि वाला जीव किसी समय अपने पिता पर चढ़ाई कर आये हुए शत्रु को सुन कर वैक्रिय लब्धि से अपने आत्म प्रदेशों को गर्भ से बाहर निकालता है और वैक्रिय समुद्घात करके चतुरंगिणी सेना तैयार करके शत्रु से संग्राम करता है। संग्राम करता हुआ वह जीव आयुष्य पूर्ण कर के मर कर नरक में उत्पन्न होता है क्योंकि उस समय वह जीव राज्य धन कामभोगादि का अभिलाषी है। अतः मरकर नरक❀ में जाता है।

❀ भगवती सूत्र के चौवीसवें शतक में कहा है कि तिर्यंच जघन्य अन्तर्मुहूर्त वाला और मनुष्य जघन्य पृथक्त्व मास (२ महीने से लेकर ९ महीने तक) वाला नरक में जा सकता है।

१०—अहो भगवान्! क्या गर्भ में रहा हुआ जीव देवता में उत्पन्न हो सकता है? हाँ, गौतम! कोई जीव देवता में उत्पन्न होता है और कोई नहीं होता।

११—अहो भगवान्! गर्भ में रहा हुआ जीव मर कर किस कारण से देवता में उत्पन्न हो सकता है? हे गौतम! गर्भ में रहा हुआ संज्ञी (सन्नी) पञ्चेन्द्रिय, पूर्ण पर्याप्ति वाला, जीव तथारूप के श्रमण माहन के पास एक भी आर्य वचन (धर्म वचन) सुन कर परम संवेग की श्रद्धा और धर्म पर तीव्र प्रेम होने से धर्म पुण्य स्वर्ग मोक्ष का अभिलाषी शुद्ध चित्त, मन, लेश्या, अध्यवसाय में काल करे तो वह गर्भस्थ जीव मर कर स्वर्ग में उत्पन्न होता है।

१२—अहो भगवान्! गर्भ में जीव किस तरह से रहता है? क्या समचित्त रहता है या पसवाड़े से रहता है या अधोमुख रहता है? हे गौतम! गर्भ में जीव समचित्त भी रहता है, पसवाड़े से भी रहता है, और अधोमुख भी रहता है। जब माता सोती है तो गर्भ का जीव भी सोता है, जब माता जागती है तो गर्भ का जीव भी जागता है। माता सुखी रहे तो गर्भ का जीव भी सुखी रहता है और माता दुखी रहे तो गर्भ का जीव भी दुखी रहता है। प्रसव के समय मस्तक से या पैरों से गर्भ के बाहर आता है। जो जीव पापी होता है वह प्रसव के समय योनि द्वार पर टेढ़ा होकर आता है, इससे मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। कदाचित,

अशुभ कर्म के उदय से जीवित रहे तो दुर्वर्ण, दुर्गन्ध, दुःरस, दुःस्पर्श वाला और अनिष्ट कान्ति, अमनोज्ञ, हीनस्वर, दीनस्वर यावत् अनादेय वचन वाला और महान् दुःख में जीवन व्यतीत करने वाला होता है। जिस जीव ने पूर्व भव में अशुभ कर्म न बांधे हों किन्तु शुभ कर्म बांधे हों तो वह इष्ट प्रिय वल्लभ सुस्वर वाला यावत् आदेय वचन वाला और परम सुख में जीवन व्यतीत करने वाला होता है। इसलिए शास्त्रकार फरमाते हैं कि जीव को सुकृत करना चाहिए जिससे क्रमशः तीर्थङ्कर भगवान् की आज्ञा का आराधन करके मोक्ष के अक्षय सुखों को प्राप्त करे। फिर जन्म जरा मरण के दुःखों से व्याप्त इस संसार में आना ही न पड़े, जन्म लेना ही न पड़े और गर्भ के दुःखों को देखना ही न पड़े।

> धर्म करो रे जीवड़ा, धर्म कियां सुख होय।
> धर्म करंता जीवड़ा, दुखिया न दीठा कोय॥

श्री भगवतीजी सूत्र के दूसरे शतक के पांचवें उद्देशा में—

१३—अहो भगवान्! गर्भ की स्थिति कितनी है? हे गौतम! उदक (पानी) गर्भ की स्थिति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट ६ मास की। तिर्यञ्चणी के गर्भ की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट ८ वर्ष की। मनुष्यणी के गर्भ की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट १२ वर्ष की। मनुष्यणी के गर्भ

की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट २४ वर्ष की ❀ है।

१४—अहो भगवान्! वीर्य कितने काल तक सचित्त रहता है? हे गौतम! तिर्यञ्चणी की योनि में प्रविष्ट हुआ तिर्यञ्च का वीर्य और मनुष्यणी की योनि में प्रविष्ट हुआ पुरुष का वीर्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट १२ मुहूर्त तक सचित्त रहता है, फिर विनष्ट हो जाता है।

१५—अहो भगवान्! एक भव में एक जीव के कितने पिता हो सकते हैं? हे गौतम! जघन्य १-२-३, उत्कृष्ट प्रत्येक (पृथक्त्व) सौ पिता हो सकते हैं।

१६—अहो भगवान्! एक भव आसरी एक माता की कुक्षि में कितने जीव उत्पन्न हो सकते हैं? हे गौतम! जघन्य १-२-३, उत्कृष्ट प्रत्येक (पृथक्त्व) लाख जीव उत्पन्न हो सकते हैं।

१७—अहो भगवान्! मैथुन का कैसा पाप है? हे गौतम! जैसे किसी भूंगली नाल में रुई भर कर गर्म लोह की सलाई डाली जाय तो वह रुई जल कर भस्म हो जाती है, इस प्रकार का पाप मैथुन सेवन करने वाले को लगता है।

❀ कोई पापी जीव माता के गर्भ में १२ वर्ष रहकर मर जावे और फिर उसी गर्भ में अथवा अन्य स्त्री के गर्भ में उत्पन्न होकर फिर १२ वर्ष रह सकता है इस तरह २४ वर्ष तक रह सकता है।

तंदुल वेयालिय पइण्णा से—

१८—अहो भगवान्! पुत्र पुत्री कैसे उत्पन्न होते हैं? हे गौतम! माता की दक्षिण (दाहिनी) कुक्षि में पुत्र उत्पन्न होता है और बांई कुक्षि में पुत्री उत्पन्न होती है, बीच में नपुंसक उत्पन्न होता है। ओज (रुधिर) अल्प और वीर्य ज्यादा हो तो पुत्र उत्पन्न होता है। ओज (रुधिर) ज्यादा और वीर्य थोड़ा हो तो पुत्री उत्पन्न होती है। ओज (रुधिर) और वीर्य बराबर हों तो नपुंसक होता है। यदि स्त्री स्त्री को सेवन करे तो बिम्ब होता है।

सेवं भंते! सेवं भंते!!

(थोकड़ा नं० २०)

श्री भगवतीजी सूत्र के पहले शतक के आठवें उद्देशे में 'वीर्य' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

१—अहो भगवान्! जीव के कितने भेद हैं? हे गौतम! जीव के तीन भेद हैं—एकान्त बाल जीव, पण्डित जीव, बाल पण्डित जीव।

२—अहो भगवान्! एकान्त बाल जीव, पण्डित जीव और बाल पण्डित जीव किस गति का आयुष्य बांध कर किस गति में जाते हैं? हे गौतम! एकान्त बाल जीव (मिथ्यात्वी) चारों गति (नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य, देवता) का आयुष्य बांधता है और जिस गति का आयुष्य बांधता है, उसी गति में उत्पन्न होता है।

३—एकान्त पण्डित में आयुष्य बन्ध की भजना है अर्थात् कदाचित् आयुष्य बन्ध करता है और कदाचित् नहीं करता है क्योंकि एकान्त पण्डित जीव की दो गति हैं—कोई जीव तो अन्तक्रिया करके उसी भव में मोक्ष चला जाता है वह आयुष्य बन्ध नहीं करता है। जो अन्त क्रिया नहीं करता वह वैमानिक देव गति का आयुष्य बन्ध करके वैमानिक देवों में उत्पन्न होता है।

४—बाल पण्डित जीव सिर्फ वैमानिक देवगति का आयुष्य बांध कर वैमानिक देवों में उत्पन्न होता है। नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य इन तीन गतियों का आयुष्य नहीं बांधता है क्योंकि वह तथारूप (साधु के आचार के शुद्ध पालने वाले) के श्रमण माहन के पास एक भी आर्य वचन (धर्म वचन) सुन कर देशतः (आंशिक रूप से) त्यस्स पच्चक्खाण करता है और देशतः पाप से निवृत्त होता है। इसलिए उपरोक्त तीन गतियों का आयुष्य नहीं बांधता है।

५—समुच्चय जीव में और मनुष्य में बाल, पण्डित और बाल पण्डित, ये तीनों बोल पाये जाते हैं। तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय में बाल और बाल पण्डित ये दो बोल पाये जाते हैं। शेष २२ दण्डकों में बाल, यह सिर्फ एक बोल पाया जाता है।

६—अल्पाबोध (अल्प बहुत्व)—समुच्चय जीव में सबसे थोड़े पण्डित, उनसे बाल पण्डित असंख्यातगुणा, उनसे बाल

अनन्तगुणा। मनुष्य में सब से थोड़े पण्डित, उनसे बालपण्डित संख्यातगुणा, उनसे बाल असंख्यातगुणा। तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय में सबसे थोड़े बालपण्डित, उनसे बाल असंख्यातगुणा।

७—अहो भगवान्! दो पुरुष समान (सरीखी) चमड़ी वाले, समान उमर वाले, समान द्रव्य वाले, समान उपकरण (शस्त्र) वाले, वे पुरुष परस्पर एक दूसरे के साथ संग्राम (लड़ाई) करें तो उनमें से एक जीतता है और एक हारता है, इसका क्या कारण है? हे गौतम! जो पुरुष सवीर्य है वह जीतता है और जो पुरुष अवीर्य है वह हारता है। जिस पुरुष ने वीर्य को बाधाकारी (बाधा पहुँचाने वाले) कर्म नहीं बांधे हैं, नहीं स्पर्शे हैं, नहीं किये हैं यावत् वे कर्म सन्मुख नहीं आये हैं, उदय भाव में नहीं आये हैं किन्तु उपशमभाव में हैं, वह पुरुष जीतता है। जो पुरुष अवीर्य है, वीर्य रहित कर्म बांधे हैं, स्पर्शे हैं, किये हैं, यावत् वे कर्म सन्मुख आये हैं, उदय भाव में आये हैं, उपशान्त नहीं हैं वह पुरुष हारता है।

८—अहो भगवान्! जीव सवीर्य है या अवीर्य है? हे गौतम! जीव सवीर्य भी है और अवीर्य भी है। अहो भगवान्! इसका क्या कारण? हे गौतम! जीव के दो भेद हैं—सिद्ध और संसारी। सिद्ध भगवान् तो अवीर्य हैं। संसारी के दो भेद—शैलेशी अवस्था को प्राप्त, और अशैलेशी अवस्था को प्राप्त। शैलेशी अवस्था को प्राप्त तो चौदहवें गुणस्थान वाले हैं,

वे लब्धि वीर्य की अपेक्षा तो सवीर्य हैं और करण वीर्य की अपेक्षा अवीर्य हैं। अशैलेशी अवस्था को प्राप्त तेरह गुणस्थान वाले जीव हैं, वे लब्धिवीर्य की अपेक्षा तो सवीर्य हैं और करण वीर्य की अपेक्षा जो जीव उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम, इन पांच शक्ति सहित हैं वे सवीर्य हैं और जो पांच शक्ति रहित हैं वे अवीर्य हैं। मनुष्य के दण्डक को छोड़ कर बाकी २३ दण्डक के जीव लब्धि वीर्य की अपेक्षा सवीर्य हैं और करण वीर्य की अपेक्षा उत्थान, कर्म आदि ५ शक्ति वाले तो सवीर्य हैं और ५ शक्ति रहित अवीर्य हैं। मनुष्य में समुच्चय जीव की तरह कह देना किन्तु सिद्ध भगवान् का कथन नहीं करना।

सेवं भंते ! सेवं भंते !!

(थोकड़ा नं० २१)

श्री भगवतीजी सूत्र के पहले शतक के नवमें उद्देशे में 'अगुरु लघु (हल्का भारी)' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

१—अहो भगवान् ! जीव हल्का कैसे होता है और भारी कैसे होता है ? हे गौतम ! अठारह पापों से निवर्तने से जीव हल्का होता है और अठारह पापों में प्रवर्तने से जीव भारी होता है।

२—अहो भगवान्! जीव कैसे संसार घटाता है और कैसे संसार बढ़ाता है? हे गौतम! अठारह पापों से निवर्तने से जीव संसार घटाता है और अठारह पापों में प्रवर्तने से जीव संसार बढ़ाता है।

३—अहो भगवान्! किस कारण से जीव संसार को ह्रस्व करता है (संसार स्थिति घटाता है) और किस कारण से जीव संसार को दीर्घ करता है (संसार स्थिति बढ़ाता है)? हे गौतम! अठारह पापों से निवर्तने से जीव संसार को ह्रस्व करता है और अठारह पापों में प्रवर्तने से जीव संसार को दीर्घ करता है।

४—अहो भगवान्! किस कारण से जीव संसार में परिभ्रमण करता है और किस कारण से जीव संसार सागर को तिरता है? हे गौतम! अठारह पापों में प्रवर्तने से जीव संसार में परिभ्रमण करता है और अठारह पापों से निवर्तने से जीव संसार सागर तिरता है।

*हलका होना, संसार घटाना, संसार ह्रस्व करना, संसार

---

*१८ पापों में प्रवृत्ति करने से जीव भारी (गुरु) होता है, कर्म अधिक करता है, संसार दीर्घ करता है, संसार में परिभ्रमण करता है। १८ पापों से निवर्तने से जीव हल्का होता है, कर्म थोड़े करता है (जन्ममरण आसरी), संसार ह्रस्व करता है (काल आसरी) और संसार सागर से तिर जाता है।

तिरना ये चार बोल प्रशस्त हैं और भारी होना, संसार बढ़ाना, संसार दीर्घ करना और संसार परिभ्रमण करना ये चार बोल अप्रशस्त हैं।

सेवं भंते ! सेवं भंते !!

(थोकड़ा नं० २२)

श्री भगवतीजी सूत्र के पहले शतक के नवमें उद्देशे में 'गुरु, लघु, गुरुलघु, अगुरुलघु' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

द्वार—(१) द्वीप १, (२) समुद्र १, (३) वासा-क्षेत्र १, (४) दण्डक २४, (५) अस्तिकाय ५, (६) समय १, (७) कर्म ८, (८) लेश्या १२, (६ द्रव्य लेश्या, ६ भाव लेश्या), (९) दृष्टि ३, (१०) दर्शन ४, (११) ज्ञान ८ (५ ज्ञान, ३ अज्ञान), (१२) संज्ञा ४, (१३) शरीर ५, (१४) योग ३, (१५) उपयोग २, (१६) द्रव्य १, (१७) प्रदेश १, (१८) पर्याय १, (१९) अतीतकाल १, (२०) अनागत काल १, (२१) सर्व काल १, ये सब ८८ बोल हुए। इनमें ७ नरक, ७ घनोदधि, ७ घनवाय, ७ तनुवाय और ७ आकाशान्तर, ये ३५ बोल और मिला देने से कुल १२३ बोल होते हैं। इनमें गुरु, लघु, गुरुलघु, अगुरुलघु†

---

† निश्चय नय में भांगा पावे २ गुरुलघु, अगुरुलघु। व्यवहार नय में भांगा पावे ४—गुरु, लघु, गुरुलघु, अगुरुलघु।

गुरु किसे कहते हैं? भारी को गुरु कहते हैं, जैसे—पत्थर।

इन चार भांगों में से जो भांगा पाया जाता है सो कहते हैं—

सात नारकी के सात आकाशान्तर, ४ अस्तिकाय (धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय), १ समय, ८ कर्म, ६ भाव लेश्या, १ कार्मणशरीर, ३ दृष्टि, ४ दर्शन, ५ ज्ञान, ३ अज्ञान, ४ संज्ञा, २ योग (मनयोग, वचन योग), २ उपयोग, ३ काल, इन ५३ बोलों में भांगो पावे १ (अगुरुलघु), ७ तनुवाय, ७ घनवाय, ७ घनोदधि, ७ पृथ्वी, १ सर्वद्वीप, १ सर्वसमुद्र, १ सर्व क्षेत्र, ४ शरीर (कार्मण शरीर को छोड़ कर) २४ दण्डक ‡ में जितने जितने अठस्पर्शी शरीर पावें उतने २ कहना), ६ द्रव्य लेश्या, १ काय योग, इन ६६ बोलों में भांगो पावे १—गुरुलघु। पुद्गलास्तिकाय, सर्व द्रव्य, सर्व प्रदेश, सर्व पर्याय इन ४ बोलों में भांगा पावे २ तीसरा—गुरुलघु, चौथा अगुरुलघु।

सेवं भंते! सेवं भंते!!

लघु किसे कहते हैं? हल्के को लघु कहते हैं, जैसे – धूंआ। गुरुलघु किसे कहते हैं भारी और हल्के को गुरुलघु कहते हैं, जैसे—वायुकाय। अगुरुलघु किसे कहते हैं? जो न भारी हो और न हल्का हो उसे अगुरुलघु कहते हैं, जैसे—आकाश।

‡ २४ दण्डक में जीव और कार्मण शरीर में चौथा अगुरुलघु भांगा। कार्मण छोड़ कर बाकी २४ दण्डक में जितने जितने शरीर पावे उन सबमें तीसरा गुरुलघु भांगा पाता है।

(थोकड़ा नं० २३)

श्री भगवतीजी सूत्र के पहले शतक के नवमें उद्देशे में 'निर्ग्रन्थ की लघुता आदि' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

१—अहो भगवान ! क्या श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए लघुता, अल्पइच्छा, अमूर्च्छा, अगृद्धिपना और अप्रतिबद्धता प्रशस्त है ? हाँ, गौतम ! प्रशस्त है।

२—अहो भगवान् ! क्या श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अक्रोधीपना, अमानीपना, अमायीपना और अलोभीपना प्रशस्त है ? हाँ, गौतम ! प्रशस्त है।

३—अहो भगवान् ! क्या श्रमण निर्ग्रन्थ कांक्षाप्रदोष (मिथ्यात्व मोहनीय) क्षीण होने पर अन्तकर और चरम शरीरी होता है ? अथवा पहले बहुत मोह वाला भी हो परन्तु पीछे संवुडा (संवृत-संवर वाला) होकर काल करे तो सिद्ध, बुद्ध, मुक्त यावत् सब दुःखों का अन्त करने वाला होता है ? हाँ, गौतम ! होता है।

सेवं भंते ! सेवं भंते !!

(थोकड़ा नं० २४)

श्री भगवतीजी सूत्र के पहले शतक के नवमें उद्देश में 'आयुष्य बंध' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

१—अहो भगवान् ! अन्यतीर्थी कहते हैं कि एक जीव एक समय में दो आयुष्य बांधता है—इस भव का और पर भव का। जिस समय इस भव का आयुष्य बांधता है, उस समय परभव का भी आयुष्य बांधता है और जिस समय पर भव का आयुष्य बांधता है, उस समय इस भव का भी आयुष्य बांधता है। इस भव का आयुष्य बांधने से पर भव का आयुष्य बांधता है और पर भव का आयुष्य बांधने से इस भव का आयुष्य बांधता है। अहो भगवान् ! क्या अन्यतीर्थियों का यह कहना सत्य है? हे गौतम ! अन्यतीर्थियों का यह कहना मिथ्या है क्योंकि एक जीव एक समय में एक आयुष्य बांधता है—इस भव का या परभव का। जिस समय इस भव का आयुष्य बांधता है उस समय परभव का आयुष्य नहीं बांधता और जिस समय पर भव का आयुष्य बांधता है, उस समय इस भव का आयुष्य नहीं बांधता। † इस भव का आयुष्य बांधने से परभव का आयुष्य नहीं बांधता और पर भव का आयुष्य बांधने से इस भव का आयुष्य नहीं बांधता।

सेवं भंते ! सेवं भंते !!

---

† मनुष्य मनुष्यका आयुष्य बांधे वह इस भवका आयुष्य कहलाता है। मनुष्य अन्य गति (नारकी, तिर्यंच, देवता) का आयुष्य बांधे वह पर भवका आयुष्य कहलाता है।

(थोकड़ा नं० २५)

श्री भगवतीजी सूत्र के पहले शतक के नवमें उद्देशे में 'कालास्य वेषीपुत्र अनगार' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

तेईसवें तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के संतानीय कालास्यवेषी अनगार थे। एक दिन वे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शिष्य स्थविर भगवन्तों के पास गये और बोले—हे स्थविरों! आप सामायिक, सामायिक का अर्थ, पच्चक्खाण, पच्चक्खाण का अर्थ, संयम, संयम का अर्थ, संवर, संवर का अर्थ, विवेक, विवेक का अर्थ, व्युत्सर्ग, व्युत्सर्ग का अर्थ नहीं जानते हैं। यदि जानते हैं तो मुझे इनका अर्थ बताइये।

तब स्थविर भगवन्तों ने कहा कि–हे कालास्यवेषीपुत्र! हमारी आत्मा ही सामायिक है, यही सामायिक का अर्थ है यावत् यही व्युत्सर्ग है और यही व्युत्सर्ग का अर्थ है

२ —कालास्यवेषीपुत्र ने कहा कि–हे स्थविर भगवन्तों! यदि आत्मा ही सामायिक है यावत् आत्मा ही व्युत्सर्ग का अर्थ है तो फिर क्रोध, मान, माया, लोभ का त्याग कर इनकी निन्दा क्यों की जाती है? स्थविर भगवन्तों ने कहा–हे कालास्यवेषीपुत्र! संयम के लिए इनकी निन्दा की जाती है।

३—हे स्थविर भगवन्तों! क्या गर्हा (निन्दा) संयम है या अगर्हा संयम है? हे कालास्यवेषीपुत्र! गर्हा संयम है

किन्तु अगर्हा संयम नहीं। गर्हा सब दोषों का नाश करती है। आत्मा मिथ्यात्व को जान कर गर्हा द्वारा सब दोषों का नाश करती है। इस तरह हमारी आत्मा संयम में स्थापित है, संयम में पुष्ट है, संयम में उपस्थित है।

स्थविर भगवन्तों के पास से यह अर्थ सुन कर कालास्य वेशीपुत्र संबुद्ध हुए (समझे)। स्थविर भगवन्तों को वन्दना नमस्कार कर चार महाव्रत धर्म से पांच महाव्रत धर्म अङ्गीकार किया। बहुत वर्षों तक संयम पर्याय का पालन कर अन्त में वे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त यावत् सर्व दुःख रहित हुए।

सेवं भंते! सेवं भंते!!

(थोकड़ा नं० २६)

श्री भगवतीजी सूत्र के पहले शतक के नवमें उद्देशे में 'अपच्चक्खाण और आधाकर्मादि' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

१—अहो भगवान्! एक सेठ, एक दरिद्री, एक कृपण (कंजूस) और एक क्षत्रिय (राजा) क्या ये सब एक साथ अपच्चक्खाण की क्रिया करते हैं? हाँ, गौतम! करते हैं। अहो भगवान्! इसका क्या कारण? हे गौतम! अविरति के कारण ये सब अपच्चक्खाण की क्रिया करते हैं।

२—अहो भगवान्! आधाकर्मी आहारादि (आहार, वस्त्र, पात्र, मकान) को सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ क्या

बांधता है, क्या करता है, क्या चय करता है, क्या उपचय करता है ? हे गौतम ! आधाकर्मी आहारादि का सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ आयुष्य कर्म को छोड़ कर शिथिल बन्धन में बंधी हुई सात कर्म प्रकृतियों को मजबूत बन्धन में बांधता है यावत् बारम्बार संसारपरिभ्रमण करता है । अहो भगवान् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! आधाकर्मी आहारादि का सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ अपने धर्म का उल्लंघन कर जाता है । वह पृथ्वीकाय के जीवों से लेकर त्रसकाय तक के जीवों की घात की परवाह नहीं करता और जिन जीवों के शरीर का वह भक्षण करता है, उन जीवों पर वह अनुकम्पा नहीं करता।

२ अहो भगवान् ! प्रासुक एषणीय आहारादि का सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ क्या बांधता है यावत् क्या उपचय करता है ? हे गौतम ! आयुष्य कर्म को छोड़ कर मजबूत बन्धन में बंधी हुई सात कर्म प्रकृतियों को शिथिल बन्धन वाली करता है' आदि सारा वर्णन संवुडा (संवृत) अनगार की तरह कह देना चाहिए। विशेषता यह है कि कदाचित् आयुष्य कर्म बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता। इस प्रकार अन्त में संसार सागर को उल्लंघन कर जाता है । अहो भगवान् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! प्रासुक एषणीय आहारादि का सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ अपने धर्म का उल्लंघन नहीं करता। वह पृथ्वीकाय से लेकर त्रसकाय तक के जीवों की रक्षा करता है ।

उन जीवों की अनुकम्पा करता है। इस कारण वह संसार सागर को तिर जाता है।

सेवं भंते ! सेवं भंते !!

(थोकड़ा नं० २७)

श्री भगवतीजी सूत्र के पहले शतक के दसवें उद्देशे में 'अन्यतीर्थियों के प्रश्नोत्तर' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

१—अहो भगवान् ! अन्यतीर्थी इस तरह कहते हैं कि 'चलमाणे अचलिए जाव णिज्जरिज्जमाणे अणिज्जिण्णे (चलता हुआ नहीं चला, निर्जराता हुआ नहीं निर्जरा) क्या यह बात सत्य है ? हे गौतम ! यह बात मिथ्या है – 'चलमाणे चलिए जाव णिज्जरिज्जमाणे णिज्जिण्णे, (चलता हुआ चला, निर्जराता हुआ निर्जरा) कहना चाहिए।

२—अहो भगवान् ! अन्यतीर्थी इस तरह कहते हैं कि दो परमाणु इकट्ठे नहीं मिलते क्योंकि उनमें स्नेहकाय (स्निग्धपणा-चिकनापन) नहीं है। तीन परमाणु परस्पर मिलते हैं क्योंकि उनमें चिकनापन है। यदि तीन परमाणु के टुकड़े किये जांय तो दो टुकड़े भी हो सकते हैं और तीन टुकड़े भी हो सकते हैं। यदि दो टुकड़े होवें तो एक तरफ डेढ़ और दूसरी तरफ डेढ़ इस तरह होंगे और यदि तीन टुकड़े होंगे तो एक एक परमाणु अलग अलग हो जायगा। इसी तरह चार परमाणु

आदि के विषय में भी जान लेना चाहिए। पांच परमाणु परस्पर इकट्ठे मिल कर जीव को दुखदायी होते हैं । वह दुःख (कर्म) शाश्वत होता है, और सदा उपचय (बढना), अपचय (घटना) को प्राप्त होता रहता है।

बोलने के पहले भाषा के पुद्गल भाषा हैं और बोलने के पीछे भी भाषा के पुद्गल भाषा हैं किन्तु बोलते समय भाषा के पुद्गल भाषा नहीं हैं। इसी तरह क्रिया करने से पहले दुःख हेतु है, और क्रिया करने के बाद भी दुःख हेतु है किन्तु क्रिया करते समय दुःख हेतु नहीं है। क्रिया करने से दुःख रूप नहीं है किन्तु नहीं करने से दुःख रूप है। अकृत दुःख है, अस्पर्श दुःख है, अक्रियमाण कृत (बिना की हुई क्रिया) दुःख है। क्रिया नहीं करने से जीव वेदना वेदते हैं।

अहो भगवान्! क्या अन्यतीर्थियों का यह उपरोक्त कथन सत्य है ? हे गौतम! अन्यतीर्थियों का यह कथन मिथ्या है क्योंकि दो परमाणु परस्पर इकट्ठे मिलते हैं क्योंकि उनमें स्नेहकाय (चिकनापन) है, इनके दो टुकड़े करने से एक एक परमाणु अलग अलग होता है। तीन परमाणु इकट्ठे मिलते हैं, इनके दो टुकड़े करने से एक तरफ एक परमाणु रहेगा और दूसरी तरफ दो परमाणु (दो प्रदेशी स्कन्ध) रहेगा किन्तु डेढ डेढ परमाणु इस तरह टुकड़े नहीं होते हैं। तीन टुकड़े करने से तीन परमाणु अलग अलग हो जाते हैं। इसी तरह चार प्रदेशी स्कन्ध के दो

टुकड़े, तीन टुकड़े, चार टुकड़े हो जाते हैं। पांच परमाणु परस्पर इकट्ठे मिल कर स्कन्धरूप होते हैं, वह स्कन्ध अशाश्वत है. उपचय (वृद्धि), अपचय (हानि) को प्राप्त होता है। बोलने से पहले अभाषा है, बोलने के बाद भी अभाषा है, बोलते समय भाषा है। क्रिया करने से पहले दुःख हेतु नहीं है, और क्रिया करने के बाद भी दुःख हेतु नहीं है किन्तु क्रिया करते समय दुःख हेतु है। क्रिया करने से दुःख हेतु है, क्रिया नहीं करने से दुःख हेतु नहीं है। कृत (की हुई क्रिया) दुःख है, स्पर्श दुःख है। क्रियमाण कृत दुःख है। क्रिया करके प्राण *भूत जीव सत्त्व वेदना वेदते हैं।

३—अहो भगवान् ! अन्यतीर्थी यह बात कहते हैं कि एक समय में जीव ईर्यापथिकी और साम्परायिकी ये दो क्रिया करता है। सो क्या यह बात सत्य है ? हे गौतम ! यह बात मिथ्या है क्योंकि जीव एक समय में एक ही क्रिया करता है (ईर्या-

---

* प्राण—बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय जीवों को 'प्राण' कहते हैं।

भूत—वनस्पति काय के जीवों को 'भूत' कहते हैं।

जीव—पंचेन्द्रिय को 'जीव' कहते हैं।

सत्त्व—पृथ्वीकाय अप्काय, तेउकाय और वायुकाय के जीवों को 'सत्त्व' कहते हैं।

पथिकी अथवा साम्परायिकी दोनों में से एक क्रिया करता है)। एक समय जीव दो क्रिया नहीं कर सकता है।

सेवं भंते ! सेवं भंते !!

(थोकड़ा नं० २८)

श्री भगवतीजी सूत्र के दूसरे शतक के पहले उद्देशे में 'उच्छ्वास निःश्वास' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

१—अहो भगवान् ! बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास और बाहरी श्वासोच्छ्वास लेते हैं, इसको मैं जानता हूँ, देखता हूँ परन्तु क्या पृथ्वीकाय अप्काय, तेउकाय वायुकाय वनस्पतिकाय आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास और बाहरी श्वासोच्छ्वास लेते हैं ? हाँ, गौतम! लेते हैं। अहो भगवान् ! ये किसका श्वासोच्छ्वास लेते हैं ? हे गौतम ! द्रव्य, क्षेत्र काल भाव यावत् २८८ बोल का निर्व्याघात आसरी नियमा (निश्चित रूप से) छह दिशा का, व्याघात आसरी कदाचित् तीन दिशा का, कदाचित् चार दिशा का, कदाचित् पांच दिशा का लेते हैं। सूत्र श्री पन्नवणाजी *के अट्ठाइसवें आहार पद माफक कह देना चाहिए।

२—अहो भगवान् ! क्या वायुकाय, वायुकाय का श्वासोच्छ्वास लेता है ? हाँ, गौतम ! लेता है। अहो भगवान् ! क्या

* श्री पन्नवणा सूत्र के थोकड़ों के तीसरे भाग के पृष्ठ ६४ पर देखिये।

वायुकाय अनेक लाखों बार मर कर वायुकाय में उत्पन्न होता है? हाँ, गौतम ! उत्पन्न होता है। अहो भगवान् ! क्या वायुकाय स्पर्श से मरता है या बिना स्पर्श किये ही मरता है ? हे गौतम ! वायुकाय स्पर्श से मरता है (सोपक्रमी आयुष्य आसरी), किन्तु बिना स्पर्श किये नहीं मरता । अहो भगवान् ! क्या वायुकाय स्वकाया के स्पर्श से मरता है अथवा परकाया के स्पर्श से मरता है ? हे गौतम ! वायुकाय स्वकाया के शस्त्र के स्पर्श से मरता है और परकाया के शस्त्र के स्पर्श से भी मरता है⊛ । अहो भगवान् ! क्या वायुकाय शरीरसहित मरता है अथवा शरीर रहित मरता है ? हे गौतम ! कथञ्चित् (किसी अपेक्षा से) शरीर सहित मरता है और कथंचित् (किसी अपेक्षा से) शरीर रहित मरता है । अहो भगवान् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! वायुकाय में चार शरीर होते हैं—औदारिक, वैक्रिय, तैजस, कार्मण । औदारिक और वैक्रिय शरीर की अपेक्षा शरीर रहित मरता है और तैजस कार्मण शरीर की अपेक्षा शरीर सहित मरता है ।

सेवं भंते ! सेवं भंते !!

(थोकड़ा नं० ७६)

श्री भगवतीजी सूत्र के दूसरे शतक के पहले उद्देशे में 'मडाई निर्ग्रन्थ' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

⊛ यह अर्थ टीका में है ।

१—अहो भगवान् ! मडाई (प्रासुक भोजन करने वाला) निर्ग्रन्थ, जिसने भव रोका नहीं, भव (संसार) का प्रपंच रोका नहीं, संसार घटाया नहीं, संसार में वेदने योग्य कर्म घटाये नहीं, संसार विच्छेद किया नहीं, संसार में वेदने योग्य कर्म विच्छेद किये नहीं, प्रयोजन सिद्ध किया नहीं, कार्य पूर्ण किया नहीं, ऐसा मडाई (प्रासुक भोजी) निर्ग्रन्थ मर कर क्या फिर मनुष्य भव आदि को प्राप्त करता है ? हाँ, गौतम ! प्राप्त करता है ।

२—अहो भगवान् ! मडाई निर्ग्रन्थ के जीव को क्या कहना चाहिए ? हे गौतम ! उसको प्राण, भूत जीव, सत्त्व, विज्ञ, वेद कहना चाहिए । अहो भगवान् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! मडाई निर्ग्रन्थ बाह्य आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेता है इसलिए वह 'प्राण' कहलाता है । वह भूतकाल में था, वर्तमान काल में है और भविष्य काल में रहेगा इसलिए 'भूत' कहलाता है । वह जीता है, जीवत्व और आयुष्य कर्म का अनुभव करता है इसलिए जीव कहलाता है । शुभाशुभ कर्मों से संयुक्त है इसलिए 'सत्त्व' कहलाता है । तीखे, कड़वे, कषैले, खट्टे और मीठे रसों को जानता है इसलिए 'विज्ञ' कहलाता है । सुख दुःख को भोगता है इसलिए 'वेद' कहलाता है ।

३ -अहो भगवान् ! मडाई निर्ग्रन्थ जिसने भव रोक दिया, भव के प्रपंच को रोक दिया, संसार घटा दिया, संसार

में वेदने योग्य कर्म घटा दिये, संसार विच्छेद कर दिया, संसार में वेदने योग्य कर्म विच्छेद कर दिये, प्रयोजन सिद्ध कर लिया, कार्य पूर्ण कर लिया, ऐसा मडाई निर्ग्रन्थ क्या फिर मनुष्यभव आदि भावों को प्राप्त करता है ? हे गौतम ! ऐसा मडाई निर्ग्रन्थ मनुष्य भव आदि भावों को प्राप्त नहीं करता है।

४—अहो भगवान् ! ऐसे मडाई निर्ग्रन्थ के जीव को क्या कहना चाहिए ? हे गौतम ! उसे 'सिद्ध' कहना, 'बुद्ध' कहना, 'मुक्त' कहना, 'पारगत (पार पहुँचा हुआ)' कहना, परंपरागत (अनुक्रम से एक पगतिये से दूसरे और दूसरे से तीसरे, इस तरह संसार के पार पहुँचा हुआ) कहना। इस प्रकार उसे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत (परिणिव्वुडे), अन्तकृत (अंतकडे) और सर्व दुःखों से रहित कहना चाहिए।

सेवं भंते ! सेवं भंते !!

(थोकड़ा नं० ३०)

श्री भगवतीजी सूत्र के दूसरे शतक के पहले उद्देशे में 'खंदकजी' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

सावत्थी (श्रावस्ती) नगरी में गर्दभाली परिव्राजक (तापस) का शिष्य स्कन्दक नाम का परिव्राजक रहता था वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वणवेद ये ४ वेद, पांचवां इति-

हास, छठा निघंटु नाम का कोप तथा वेद के छह अंगों※ का जानकार स्वमत के शास्त्रों में प्रवीण, ‡ सारए वारए धारए पारए था।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का श्रावक पिङ्गल नामका नियंठा स्कन्दकजी के पास आया। उसने स्कन्दकजी से प्रश्न पूछे—(१) हे स्कन्दक! क्या लोक अन्त सहित है या अन्त रहित है? (२) जीव अन्त सहित है या अन्त रहित है? (३) सिद्धि (सिद्ध शिला) अन्त सहित है या अन्त रहित है? (४) सिद्ध भगवान् अन्त सहित है या अन्त रहित है? (५) किस मरण से मरता हुआ जीव संसार घटाता है और किस मरण से मरता हुआ जीव संसार बढ़ाता है?

※ शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, (गणित शास्त्र)।

‡ सारए—(सारक)—शिष्यों को पढ़ाने वाला। अथवा स्मारक यानी भूले हुए पाठ को याद कराने वाला।

वारए—(वारक)—यदि कोई शिष्य अशुद्ध पाठ बोलता हो तो उसे रोकने वाला।

धारए—(धारक)—पढ़ी हुई विद्या को सम्यक् प्रकार से धारण करने वाला। अथवा अपने पढ़ाये हुए शिष्यों को सम्यक् प्रकार से संयम में प्रवृत्ति कराने वाला।

पारए—(पारक)—शास्त्रों का पारगामी, शास्त्रों में निपुण।

पिंगल नियंठा ने ये प्रश्न स्कन्दकजी से एक बार, दो बार, तीन बार पूछे किन्तु स्कन्दकजी कुछ भी जवाब दे सके नहीं, वे मौन रहे। उनके मन में शंका उत्पन्न हुई कि—इन प्रश्नों का उत्तर यह है अथवा दूसरा है। उनके मन में कांक्षा उत्पन्न हुई कि—मैं इन प्रश्नों का उत्तर कैसे दूँ? मुझे इन प्रश्नों का उत्तर कैसे आवे? उनके मनमें विचिकित्सा उत्पन्न हुई कि—मैं जो उत्तर दूँ उससे प्रश्न करने वाले को संतोष होगा या नहीं। उनकी बुद्धि में भेद उत्पन्न हुआ कि—अब मैं क्या करूँ? उनके मनमें क्लेश (खिन्नता) उत्पन्न हुआ कि—इस विषय में मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ। जब स्कन्दकजी कुछ भी उत्तर नहीं दे सके तब पिंगल नियंठा वहाँ से चला गया।

इसके बाद किसी समय श्रावस्ती नगरी में जहाँ तीन मार्ग, चार मार्ग और बहुत मार्ग बहते हैं, वहाँ लोग परस्पर बातें करते हैं कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी कयंगला (कृताङ्गला) नगरी के बाहर छत्रपलाश उद्यान में पधारे हैं। लोग भगवान् को वन्दन करने के लिये जाने लगे। यह बात स्कन्दकजी ने भी सुनी। सुनकर मन में विचार किया कि मैं भगवान् के पास जाकर अपने मन की शंका निकालूँ, शंका का समाधान करूँ। ऐसा विचार कर अपने स्थान पर गये और तापस सम्बन्धी भण्डोपकरण लेकर भगवान् महावीर स्वामी के पास जाने के लिए रवाना हुए। उस समय भगवान महावीर स्वामी ने

गौतम स्वामी से कहा कि हे गौतम ! आज तूं अपने पूर्वसाथी को देखेगा । तब गौतम स्वामी ने पूछा कि अहो भगवान् ! मैं आज किसको देखूँगा ? भगवान् ने फरमाया कि हे गौतम ! तूं स्कन्दक नाम के परिव्राजक को देखेगा । तब गौतम स्वामी ने पूछा कि अहो भगवान् ! वह किस लिए आता है ? हे गौतम ! पिंगल नामक नियंठा ने उससे पांच प्रश्न (लोक अन्त सहित है या अन्त रहित है ?, इत्यादि) पूछे । उनका जवाब वह नहीं दे सका । मन में शंका कांता आदि उत्पन्न हुई । इसलिए उन प्रश्नों का उत्तर पूछने के लिए वह मेरे पास आता है । फिर गौतम स्वामी ने पूछा कि अहो भगवान् ! क्या स्कन्दक आपके पास दीचा लेगा ? हाँ, गौतम ! दीचा लेगा । अहो भगवान् ! स्कन्दक कितनी देर में आवेगा ? हे गौतम ! अभी जल्दी ही आवेगा ।

इसके बाद थोड़ी ही देर में गौतम स्वामी ने स्कन्दकजी को आते हुए देखा । देख कर गौतम स्वामी उठ कर सामने गये और बोले—हे स्कन्दकजी ! तुम्हारा आना अच्छा हुआ (स्वागत है) । पिंगल नामके नियंठा ने तुम से ५ प्रश्न पूछे जिनका जवाब तुम नहीं दे सके । उनका जवाब पूछने के लिये भगवान् के पास आये हो ? हे स्कन्दकजी ! क्या यह बात सच्ची है ? हाँ, गौतम ! यह बात सच्ची है । तब स्कन्दकजी ने गौतम स्वामी से पूछा कि हे गौतम ! इस तरह के ज्ञानी पुरुष कौन

हैं? जिन्होंने मेरे मन की गुप्त बात आपको कह दी जिससे आप मेरे मन की गुप्त बात जानते हैं? हे स्कन्दकजी! मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अरिहन्त हैं, जिन हैं, केवली हैं, तीनों काल की बात को जानने वाले हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्व दर्शी हैं, उन्होंने तुम्हारे मन की गुप्त बात मेरे से कही है, इसलिए मैं जानता हूँ। फिर गौतम स्वामी और स्कन्दकजी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आये। भगवान् को देखकर स्कन्दकजी हर्षित हुए, आनन्दित हुए। भगवान् को तीन बार प्रदक्षिणा कर वन्दना नमस्कार कर पर्युपासना करने लगे। तब भगवान् ने स्कन्दकजी से कहा कि हे स्कन्दक! पिंगल नाम के नियंठा ने तुमसे पांच प्रश्न पूछे, जिनका जवाब तुम नहीं दे सके। उनका जवाब पूछने के लिए मेरे पास आये हो। क्या यह बात सच्ची है? हाँ, भगवान्! सच्ची है।

(१) हे स्कन्दक! मैंने लोक चार प्रकार का बतलाया है— द्रव्यलोक, क्षेत्रलोक, काललोक, भावलोक। द्रव्य से—लोक एक है, अन्तसहित है क्षेत्र से—लोक असंख्यात कोडाकोटी योजन का लम्बा चौड़ा है, अन्तसहित है। काल से—लोक भूत काल में था, वर्तमान काल में है और भविष्य काल में रहेगा लोक ध्रुव है, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है, अन्तरहित है। भाव से अनन्त वर्ण पर्याय रूप है, अनन्त गन्ध, रस, स्पर्श पर्याय रूप है, अनन्त गुरुलघु पर्यायरूप है, अनन्त अगुरुलघु पर्याय रूप है, अन्त रहित है।

(२) जीव के चार भेद हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। द्रव्य से—जीव एक है, अन्त सहित है। क्षेत्र से—जीव, असंख्यात प्रदेश वाला है, असंख्यात आकाश प्रदेश अवगाहन किये हैं, अन्तसहित है। काल से—जीव नित्य है, अन्त रहित है। भाव से—जीव के अनन्त ज्ञान पर्याय हैं, अनन्त दर्शन पर्याय हैं, अनन्त चारित्र पर्याय हैं, अनन्त अगुरुलघु पर्याय हैं, अन्त रहित है।

(३) सिद्धि (सिद्ध शिला) के ४ भेद हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। द्रव्य से—सिद्धि एक है, अन्तसहित है। क्षेत्र से–सिद्धि ४५ लाख योजन की लम्बी चौड़ी है, १४२३०२४९ योजन भाभेरी परिधि है, अन्तसहित है। काल से—सिद्धि नित्य है, अन्त रहित है। भाव से—सिद्धि अनन्त वर्ण पर्याय वाली है अनन्त गन्ध, रस, स्पर्श पर्याय वाली है। अनन्त गुरुलघु पर्याय रूप है, अनन्त अगुरुलघु पर्याय रूप है, अन्त-रहित है (द्रव्यसिद्धि क्षेत्रसिद्धि अन्त वाली है और कालसिद्धि और भावसिद्धि अन्तरहित है), सिद्धि अन्त सहित भी है और अन्त रहित भी है।

(४) सिद्ध के ४ भेद हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। द्रव्य से—सिद्ध एक है, अन्त सहित है। क्षेत्र से—सिद्ध असंख्यात प्रदेश वाले हैं, असंख्यात आकाशप्रदेश अवगाहन किये हैं, अन्त सहित हैं। काल से—सिद्ध आदि सहित हैं, अन्त

रहित हैं। भाव से—सिद्ध अनन्त ज्ञान पर्याय अनन्त दर्शन पर्याय, अनन्त चारित्र पर्याय वाले हैं यावत् अनन्त अगुरुलघु पर्याय वाले हैं, अन्त रहित हैं।

(५) अहो भगवान्! कौन से मरण से मरता हुआ जीव संसार बढ़ाता है और कौन से मरण से मरता हुआ जीव संसार घटाता है? हे स्कन्दक! मरण दो प्रकार का है–बाल मरण, पण्डित मरण। बाल मरण के १२ भेद हैं—१–बलन्मरण–व्रत से भ्रष्ट होकर तड़फता हुआ मरे। २–वसट्टमरण (वशार्त्तमरण) पतंग की तरह इन्द्रियों के वशीभूत होकर मरे। ३–अंतोसल्ल-मरण (अन्तः शल्य मरण)–लगे हुए दोषों की आलोचना किये बिना मरे। ४–तद्भवमरण–जिस गति से मरे वापिस उसी गति में उत्पन्न होने की चिन्तवना करता हुआ मरे, जैसे—मनुष्यगति से मर कर वापिस मनुष्यगति में उत्पन्न होने की चिन्तवना करता हुआ मरे। ५–गिरिपतन मरण—पर्वत से पड़ कर मरे। ६–तरुपतन मरण—वृक्ष पर से गिर कर मरे। ७–जलप्रवेश मरण—पानी में डूब कर मरे। ८–ज्वलन प्रवेश मरण—अग्नि में जल कर मरे। ९–विष भक्षणमरण—जहर खाकर मरे। १०–सत्थोवाडण (शस्त्रावपाटन मरण)–शस्त्र से मरे। ११–वेहानस मरण—गले में फांसी लगा कर मरे। १२—गिद्धपिट्ठ (गृध्रपृष्ठ) मरण—मरे हुए जानवर के कलेवर में प्रवेश करके मरे इन बारह प्रकार के बालमरण से

मरता हुआ जीव नारकी के अनन्तभव बढ़ाता है, तिर्यञ्च के अनन्त भव बढ़ाता है, मनुष्य के अनन्त भव बढ़ाता है, देवता के अनन्त भव बढ़ाता है, वह अनन्त काल तक संसार में परिभ्रमण करता है।

पण्डित मरण के २ भेद हैं—पाओवगमण—पादपोपगमन (वृक्ष की तरह स्थिर रह कर मरना), और भक्त प्रत्याख्यान (भोजन पानी का त्याग करके मरना)। इन दोनों के दो दो भेद हैं—* निहारी और अनिहारी। पण्डित मरण से मरता हुआ जीव नारकी के अनन्त भव घटाता है यावत् भवभ्रमण घटाता है, अल्प संसारी होता है।

भगवान् के उपरोक्त वचनों को सुनकर स्कन्दकजी ने भगवान् के पास संयम ग्रहण किया। फिर भिक्षु की १२ पडिमा धारण कर, गुणरत्न संवत्सर तप किया, और भी अनेक प्रकार की तपस्या करके एक मास का संथारा किया। यहाँ का आयुष्य

---

* निहारी—जो संथारा ग्राम नगर बस्ती में किया जाय जिससे मृतकलेवर को बाहर ले जाकर अग्निदाहादि संस्कार करना पड़े उसे निहारी कहते हैं।

अनिहारी—जो संथारा ग्राम नगर बस्ती से बाहर जंगल आदि एकान्त स्थान में किया जाय जिससे मृतकलेवर को बाहर लजाने की आवश्यकता न रहे उसे अनिहारी कहते हैं।

पूर्ण कर बारहवें देवलोक में उत्पन्न हुए। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होवेंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त कर मोक्ष जावेंगे।

सेवं भंते ! सेवं भंते !!

(थोकड़ा नं० ३१)

श्री भगवतीजी सूत्र के दूसरे शतक के पांचवें उद्देशे में 'सवणे णाणे' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

सवणे णाणे विण्णाणे, पच्चक्खाणे य संजमे।
अणण्हये तवे चेव, वोदाणे अकिरिया सिद्धी ॥

१—अहो भगवान् ! तथारूप के श्रमण माहण की पर्युपासना करने वाले पुरुष को उसकी पर्युपासना (सेवा) का क्या फल मिलता है ? हे गौतम ! श्रवण फल मिलता है अर्थात् सत्शास्त्रों का सुनना मिलता है।

२—अहो भगवान् ! श्रवण का क्या फल है ? हे गौतम ! श्रवण का फल ज्ञान (जाणपणा) है।

३—अहो भगवान् ! ज्ञान का क्या फल है ? हे गौतम ! ज्ञान का फल विज्ञान (विवेचन पूर्वक ज्ञान) है।

४—अहो भगवान् ! विज्ञान का क्या फल है ? हे गौतम! विज्ञान का फल पच्चक्खाण है।

५—अहो भगवान् ! पच्चक्खाण का क्या फल है ? हे गौतम ! पच्चक्खाण का फल संयम है।

६ – अहो भगवान् ! संयम का क्या फल है ? हे गौतम ! संयम का फल अनाश्रव (आश्रव रहित होना) है।

७—अहो भगवान् ! अनाश्रव का क्या फल है ? हे गौतम ! अनाश्रव का फल तप है।

८—अहो भगवान् ! तप का क्या फल है ? हे गौतम ! तप का फल वोदाण (कर्मों का नाश) है।

९—अहो भगवान् ! वोदाण (कर्म नाश) का क्या फल है ? हे गौतम ! वोदाण का फल अक्रिया (निष्क्रियता-क्रिया रहित होना) है

१०—अहो भगवान् ! अक्रिया का क्या फल है ? हे गौतम ! अक्रिया का फल सिद्धि है !

सेवं भंते ! सेवं भंते !!

(थोकड़ा नं० ३२)

श्री भगवतीजी सूत्र के दूसरे शतक के दसवें उद्देशे में 'पंचास्तिकाय' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं—

अहो भगवान् ! अस्तिकाय के कितने भेद हैं ? हे गौतम ! अस्तिकाय के ५ भेद हैं-धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय ।

१-अहो भगवान्! धर्मास्तिकाय में कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श पाये जाते हैं? हे गौतम! धर्मास्तिकाय में वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं, अरूपी अजीव शाश्वत, अवस्थित लोक द्रव्य है। धर्मास्तिकाय के ५ भेद हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, गुण। द्रव्य से-धर्मास्तिकाय एक द्रव्य है। क्षेत्र से-लोक प्रमाण है। काल से-आदि अन्त रहित है। भाव से-अरूपी, वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं। गुण से-चलण (गति) गुण वाला है, पानी में मछली का दृष्टान्त।

२—अहो भगवान्! अधर्मास्तिकाय में कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श पाये जाते हैं? हे गौतम! अधर्मास्तिकाय में वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं, अरूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित लोक द्रव्य है। अधर्मास्तिकाय के ५ भेद हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, गुण। द्रव्य से—अधर्मास्तिकाय एक द्रव्य है। क्षेत्र से—लोक प्रमाण है। काल से—आदि अन्त रहित है। भाव से—अरूपी है, वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं। गुण से—स्थिर गुण है, थके हुए पथिक को छाया का दृष्टान्त।

३—अहो भगवान्! आकाशास्तिकाय में कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श पाये जाते हैं? हे गौतम! वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं, अरूपी

अजीव शाश्वत अवस्थित लोकालोक द्रव्य। इसके ५ भेद हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव, गुण। द्रव्य से एक द्रव्य। क्षेत्र से लोकालोक प्रमाण। काल से आदि अन्त रहित। भाव से-अरूपी, वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं। गुण से-अवगाहन गुण, भींतमें खूंटी का दृष्टान्त, दूध में पतासे का दृष्टान्त आकाश में विकास का गुण।

४—अहो भगवान्! जीवास्तिकाय में कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श पाये जाते हैं? हे गौतम! वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं, अरूपी, जीव, शाश्वत अवस्थित लोक द्रव्य। इसके ५ भेद हैं-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, गुण। द्रव्य से अनन्त जीव द्रव्य। क्षेत्र से लोकप्रमाण। काल से आदि अन्त रहित। भाव से अरूपी, वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं। गुण से उपयोग गुण, चेतना लक्षण, चन्द्रमा की कला का दृष्टान्त।

५—अहो भगवान्! पुद्गलास्तिकाय में कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श पाये जाते हैं? हे गौतम! पुद्गलास्तिकाय में पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस, आठ स्पर्श पाये जाते हैं। रूपी अजीव शाश्वत अवस्थित लोक द्रव्य। इसके ५ भेद हैं-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, गुण। द्रव्य से अनन्त पुद्गल द्रव्य। क्षेत्र से-लोक प्रमाण। काल से आदि अन्त रहित। भाव से-रूपी, वर्ण है, गन्ध है, रस है, स्पर्श है। गुण से-पूरणगलन गुण, मिले बिखरे गले, बादलों का दृष्टान्त।

६-अहो भगवान्! क्या धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश को धर्मास्तिकाय कहना? २ प्रदेश, ३ प्रदेश यावत् १० प्रदेश, संख्यात प्रदेश, असंख्यात प्रदेशों में एक प्रदेश कम हो, उनको धर्मास्तिकाय कहना? हे गौतम णो इणट्ठे समट्ठे (उनको धर्मास्तिकाय नहीं कहना)। अहो भगवान्! इसका क्या कारण? हे गौतम! क्या खांडे चक्र को चक्र कहना कि पूरे चक्र को चक्र कहना? अहो भगवान्! खांडे चक्र को चक्र नहीं कहना किन्तु पूरे चक्र को चक्र कहना। इसी तरह छत्र, चमर, वस्त्र, दण्ड, शस्त्र, मोदक (लड्डू) के लिये कह देना। धर्मास्तिकाय के पूरे प्रदेश हों तो धर्मास्तिकाय कहना। जिस तरह धर्मास्तिकाय का कहा उसी तरह ७ (सातवां द्वार) अधर्मास्तिकाय का कह देना। धर्मास्तिकाय की तरह ही (आठवां द्वार) आकाशास्तिकाय का कह देना किन्तु इतनी विशेषता है कि आकाशास्तिकाय के अनन्त प्रदेश होते हैं उनमें से एक भी प्रदेश कम हो उसको आकाशास्तिकाय नहीं कहना। जिस तरह आकाशास्तिकाय का कहा उसी तरह (नववां द्वार) जीवास्तिकाय और १० (दसवां द्वार) पुद्गलास्तिकाय का कह देना।

११-अहो भगवान्! जीव अपना जीवपना कैसे बतलाता है? हे गौतम! जीव उत्थान कर्म बल वीर्य पुरुषकार पराक्रम सहित है। मतिज्ञान के अनन्त पर्याय, श्रुत ज्ञान के अनन्त पर्याय, अवधिज्ञान के अनन्त पर्याय, मनः पर्याय ज्ञान के अनन्त पर्याय, केवल ज्ञान के अनन्त पर्याय, मति अज्ञान के अनन्त

पर्याय, श्रुत अज्ञान के अनन्तपर्याय, विभंग ज्ञान के अनन्त पर्याय, चक्षु दर्शन के अनन्त पर्याय, अचक्षु दर्शन के अनन्त पर्याय, अवधि दर्शन के अनन्त पर्याय और केवल दर्शन के अनंत पर्याय हैं उनके उपयोग को धारण करता है, उपयोग लक्षण वाला है। इन कारणों से उत्थान, कर्म, बल वीर्य, पुरुषकार पराक्रम द्वारा जीव अपना जीवपना बतलाता है।

१२–अहो भगवान्! आकाशास्तिकाय के कितने भेद हैं? हे गौतम! दो भेद हैं–लोकाकाश और अलोकाकाश। अहो भगवान्! क्या लोकाकाश में जीव हैं कि जीव के देश हैं कि जीव के प्रदेश हैं, अजीव है कि अजीव के देश हैं कि अजीव के प्रदेश हैं? हे गौतम! जीव है, जीव के देश भी हैं, जीव के प्रदेश भी हैं, अजीव है, अजीव के देश भी हैं, अजीव के प्रदेश भी हैं। अहो भगवान्! लोकाकाश में जीव है तो क्या एकेन्द्रिय है कि बेइन्द्रिय है कि तेइन्द्रिय है कि चौइन्द्रिय है कि पञ्चेन्द्रिय है कि अनिन्द्रिय है? हे गौतम! नियमा एकेन्द्रिय भी है बेइन्द्रिय भी है, तेइन्द्रिय भी है, चौइन्द्रिय भी है, पंचेन्द्रिय भी है और अनिन्द्रिय भी है, इन छहों के देश भी हैं और प्रदेश भी हैं। अहो भगवान्! लोकाकाश में अजीव है तो क्या रूपी है कि अरूपी है? हे गौतम! रूपी भी है अरूपी भी है। रूपी के चार भेद–खंध, देश, प्रदेश परमाणु पुद्गल। अरूपी के ५ भेद–धर्मास्तिकाय का खंध है, देश नहीं, प्रदेश है। अधर्मास्तिकाय का खंध है, देश नहीं, प्रदेश है। अद्धा समय (काल)

अहो भगवान् ! क्या अलोकाकाश में जीव हैं, कि जीव के देश हैं, कि जीव के प्रदेश हैं, अजीव हैं कि अजीव के देश हैं कि अजीव के प्रदेश हैं ? हे गौतम ! जीव नहीं, जीव के देश नहीं, जीव के प्रदेश नहीं। अजीव नहीं हैं, अजीव के देश नहीं हैं, अजीव के प्रदेश नहीं हैं। एक अजीव द्रव्य का देश है, वह अगुरुलघु है, अनन्त अगुरुलघु गुणों से संयुक्त है, सर्व आकाश के अनन्तवांभाग ऊणा (कम) है।

१३– अहो भगवान् ! धर्मास्तिकाय कितना बड़ा है ? हे गौतम ! लोक रूप, लोक मात्र, लोक प्रमाण, लोकस्पर्शी है और लोक को स्पर्श कर रहा हुआ है। जिस तरह धर्मास्तिकाय का कहा उसी तरह १४ (चवदवाँ द्वार) अधर्मास्तिकाय, १५ (पन्द्रहवां द्वार) लोकाकाश, १६ (सोलहवां द्वार) जीवास्तिकाय, १७ (सतरहवां द्वार) पुद्गलास्तिकाय का कह देना।

अहो भगवान् ! धर्मास्तिकाय अधोलोक कितना स्पर्शा है ? हे गौतम ! आधा भाभेरा (सात राजु से कुछ अधिक) अहो भगवान् ! धर्मास्तिकाय ऊर्ध्वलोक कितना स्पर्शा है ? हे गौतम ! आधा मठेरा (सात राजु से कुछ कम)। अहो भगवान् ! धर्मास्तिकाय तिर्च्छालोक कितना स्पर्शा है ? हे गौतम ! धर्मास्तिकाय के असंख्यातवें भाग स्पर्शा है। अहो भगवान् ! ७ पृथ्वी, ७ घनोदधि, ७ घन वाय, ७ तनुवाय ने धर्मास्तिकाय को कितना स्पर्शा है ? हे गौतम ! धर्मास्तिकाय के असंख्यातवें भाग को स्पर्शा है। अहो भगवान् ! सात नारकी के सात आकाशान्तरों ने

धर्मास्तिकाय को कितना स्पर्शा है ? हे गौतम ! धर्मास्तिकाय के संख्यातवें भाग को स्पर्शा है । अहो भगवान् ! जम्बूद्वीप आदि असंख्यात द्वीप, लवणसमुद्र आदि असंख्यात समुद्र धर्मास्तिकाय को कितना स्पर्शा है ? हे गौतम ! धर्मास्तिकाय के असंख्यातवें भाग को स्पर्शा है । अहो भगवान् ! १२ देवलोक, ६ ग्रैवेयक, ५ अनुत्तर विमान, इसिपब्भारा पृथ्वी (सिद्धसिला) धर्मास्तिकाय को कितना स्पर्शा है ? हे गौतम ! धर्मास्तिकाय के असंख्यातवें भाग को स्पर्शा है ।

जिस तरह धर्मास्तिकाय से ❀६७ बोल कहे उसी तरह अधर्मास्तिकाय से ६७ बोल और लोकाकाश से ६७ बोल कह देने चाहिए । ये ६७+६७+६७=२०१ और १७ समुच्चय के सब मिल कर २१८ बोल हुए ।

सेवं भंते ! सेवं भंते !!

❀ १ अधोलोक, २ ऊर्ध्वलोक, ३ तिर्च्छालोक ये ३ लोक के ३ बोल ७ पृथ्वी ७ घनोदधि, ७ घनवाय, ७ तनुवाय, ७ नारकी के आकाश आंतरे, १ द्वीप का, १ समुद्र का, १२ देवलोक, ६ ग्रैवेयक, ५ अनुत्तर विमान, १ सिद्धशिला ये सब मिलाकर ६७ बोल हुए ।